वर्ष : 13 अंक : 10 अक्टूबर, 2015 ₹ 10

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

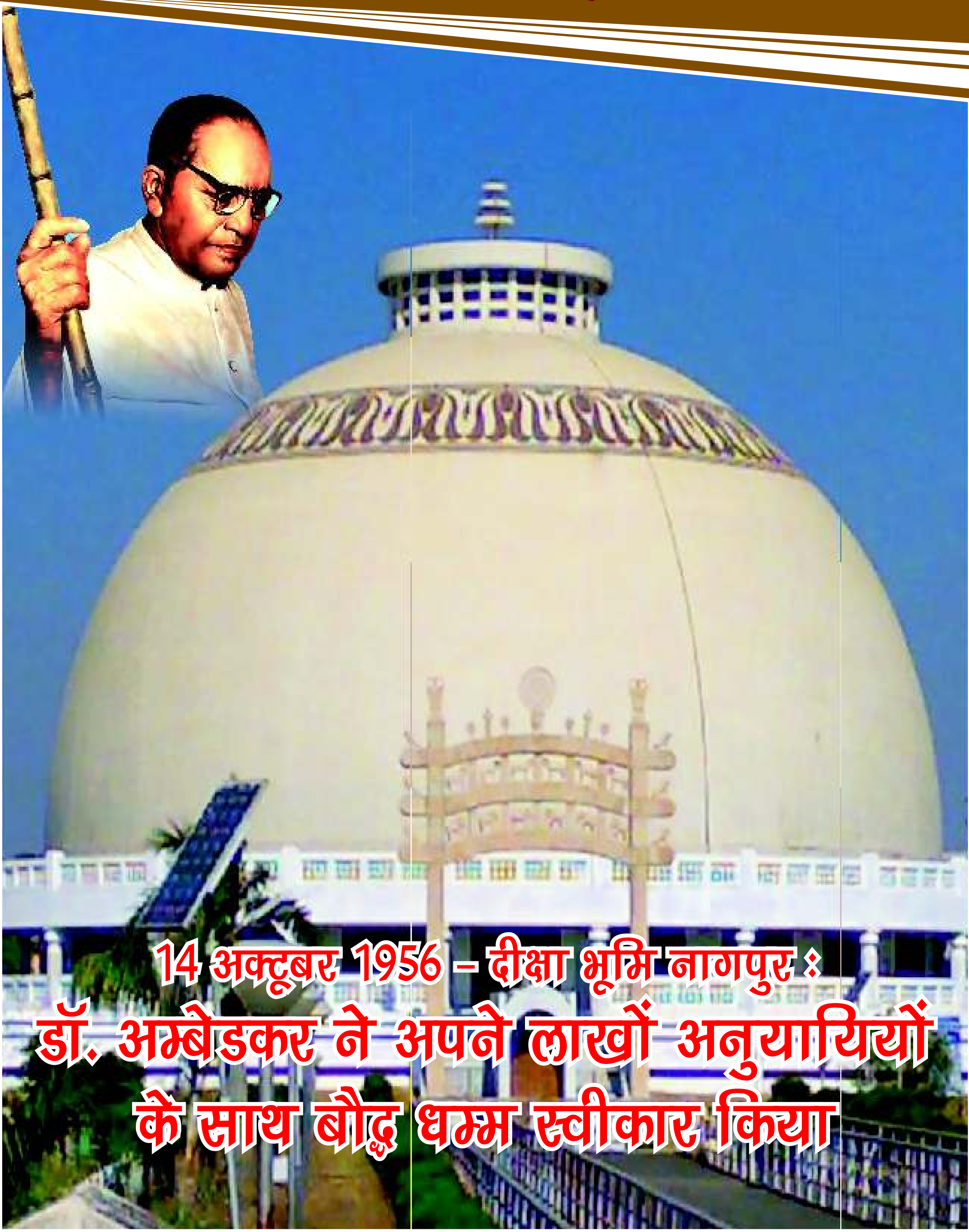

डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयन्ती वर्ष में स्मारक डाक टिकट

डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में भारत सरकार के संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के डाक विभाग द्वारा तैयार स्मारक डाक टिकट। 125 वीं जयंती वर्ष को धूमधाम से मनाने के लिए भारत सरकार ने प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय समिति गठित की है, समिति की अनुशंसाओं को कार्यान्वित करने के क्रम में डॉ. अम्बेडकर की स्मृति में उपरोक्त डाक टिकट जारी किया गया।

डॉ. अम्बेडकर की 125 वीं जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में 30 सितम्बर 2015 को डॉ. अम्बेडकर स्मारक डाक टिकट जारी किए जाने के सुअवसर पर शास्त्री भवन (नई दिल्ली) स्थित पत्र सूचना कार्यालय हॉल में विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों एवं पत्रकारों को संबोधित करते हुए सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री एवं अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान श्री थावर चन्द गेहलोत।

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

वर्ष : 13 ★ अंक : 10 ★अक्टूबर 2015 ★ कुल पृष्ठ : 60

सम्पादक
सुधीर हिलसायन

सम्पादक मंडल
चन्द्रवली
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
डॉ. प्रभु चौधरी

सम्पादकीय कार्यालय
सामाजिक न्याय संदेश
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
15 जनपथ, नई दिल्ली-110001
सम्पादकीय सम्पर्क : 011-23320588
सब्सक्रिप्शन सम्पर्क : 011-23357625
फैक्स : 011-23320582
ई.मेल : hilsayans@gmail.com
editorsnsp@gmail.com

वेबसाईट: www.ambedkarfoundation.nic.in
(सामाजिक न्याय संदेश उपर्युक्त वेबसाईट पर उपलब्ध है)

व्यापार व्यवस्थापक
जगदीश प्रसाद

प्रकाशक व मुद्रक **जी.के. द्विवेदी**, निदेशक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार) के लिए इंडिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110064 से मुद्रित तथा 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित व **सुधीर हिलसायन**, सम्पादक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा सम्पादित।

सामाजिक न्याय संदेश में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित लेखों /रचनाओं में दिए गए तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखकों /रचनाकारों का है। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए भी सामाजिक न्याय संदेश उत्तरदायी नहीं है। समस्त कानूनी मामलों का निपटारा केवल दिल्ली/नई दिल्ली के क्षेत्र एवं न्यायालयों के अधीन होगा।

RNI No. : DELHIN/2002/9036

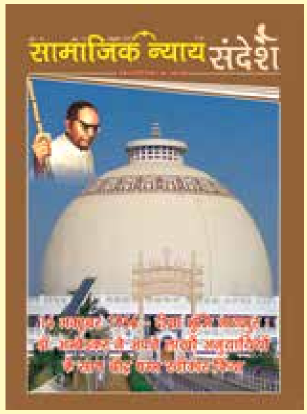

इस अंक में

❖ सम्पादकीय/14 अक्टूबर 1956 : दीक्षा भूमि नागपुर	सुधीर हिलसायन	2
❖ पुस्तक अंश/अनुसूचित जातियों की शिकायतें तथा सत्ता हस्तांतरण संबंधी महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार	डॉ. बी.आर. अम्बेडकर	4
❖ 'मन की बात' कार्यक्रम में प्रधानमंत्री का उद्बोधन		12
❖ प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के संबोधन का मूल पाठ– 'बुद्ध के ज्ञान में दुनिया की समस्या का हल'		16
❖ बौद्ध-धम्म और अन्य धर्म	डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन	18
❖ क्या 'बौद्ध-धम्म' धर्म है?	नारद महाथेरा	20
❖ धर्म नहीं 'धम्म'	दयाशंकर एडवोकेट	22
❖ गौतम बुद्धः विश्व के प्रथम सामाजिक आध्यात्मिक क्रान्तिकारी	देवेन्द्र कुमार बैसंत्री	24
❖ पुस्तक अंश/डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर – जीवन चरित	धनंजय कीर	32
❖ शिक्षण पद्धति में गुरु-शिष्य परम्परा	डॉ. प्रभु चौधरी	41
❖ भाषा/घातक है अपनी भाषा से आत्म निर्वासन	रश्मि रमानी	43
❖ शिक्षा/ विधि की शिक्षा हिन्दी से एवं न्यायालय में हिन्दी	वन्दना सक्सेना	45
❖ दलित साहित्य/ समग्र संघर्ष की महाकाव्यात्मक गाथा	गोपाल प्रधान	50
❖ रोजगार के अवसर/ जनसंपर्क के क्षेत्र में असीमित संभावनाएं	सौ. विजया जगन्नाथ पिंजारी-शिंदे	53
❖ बच्चों का कोना/परिवर्तन	बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'	55
❖ बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' की कविताएं		57

ग्राहक सदस्यता शुल्क : वार्षिक ₹ 100, द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250

डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन, 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 के नाम भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।

सम्पादकीय

14 अक्टूबर 1956 :

भारतीय समाज व्यवस्था में जो जमीनी लोग थे, जो अस्पृश्य थे, जो सर्वहारा थे, उस समाज के सच्चे प्रतिनिधि थे डॉ. अम्बेडकर। इस समाज की सदियों से चली आ रही गुलामी, दासता को समाप्त करने के लिए उन्होंने जीवन भर चिन्तन किया, उस वर्ग को जिसका मानसिक शोषण के परिणामस्वरूप आत्मविश्वास इतना कुचल दिया गया था जिससे उनमें हीनता की भावना घर कर गयी थी।

डॉ. अम्बेडकर समाज के सभी मनुष्यों को सुखी देखना चाहते थे। उनका मानना था कि यदि मनुष्य को अपना जीवन सुखी बनाना है तो उसे सदाचार, समता और बन्धुत्व का अवलम्बन करना चाहिए, और दूसरा कोई मार्ग नहीं है। बौद्ध धम्म प्रज्ञा, करुणा तथा समता का पाठ सिखाता है जिससे मनुष्य का जीवन सुखमय होता है। डॉ. अम्बेडकर के विचारों एवं योगदान का मूल्यांकन करने के लिए उन कड़वे अनुभवों की ओर ध्यान देना होगा, जिनसे उन्हें बचपन से लेकर जीवन के कई मोड़ पर गुजरना पड़ा। उनके सामने यह बड़ा सवाल था कि जिस धर्म में मानव-मानव में भेद किया जाता हो, बराबरी का अधिकार नहीं हो, वह हमारा धर्म, मनुष्यों का धर्म कैसे हो सकता है? इन सवालों का जवाब ढूंढ़ने के लिए उन्होंने 2 मार्च 1930 को महाराष्ट्र के नासिक जिले स्थित कालाराम मंदिर में प्रवेश करने का आन्दोलन एवं 20 मार्च 1927 को महाड़ के चावदार तालाब से पानी लेकर पीने का आन्दोलन किया यदि यह कहा जाए कि डॉ. अम्बेडकर अपने सवालों को सुलझाने में सफल नहीं हुए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी।

डॉ. अम्बेडकर का स्पष्ट मत था कि भारत में दलितों की दुर्दशा के लिए वर्ण-व्यवस्था जिम्मेवार रही है। जन्म से प्राथमिक शिक्षा व जीवन के अनेकों मोड़ पर उन्हें भारतीय समाज व्यवस्था की सामाजिक-राजनीतिक व आध्यात्मिक हकीकतों से टकराना पड़ा था। इन टकराहटों ने उनके व्यक्तित्व में वो माद्दा पैदा किया था जिसके कारण वे भारतीय समाज व्यवस्था के विरोधाभासों का समूल नष्ट करके एक वैकल्पिक व्यवस्था की तलाश में वर्षों तक चिन्तन, अध्ययन व मनन करते रहे जिसकी परिणति 14 अक्टूबर 1956 को सुबह 9 बजे अपने लाखों अनुयायियों के साथ नागपुर में उन्होंने बर्मा के 80 वर्षीय बौद्ध भिक्षु चन्द्रमणि महास्थविर ने बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर को त्रिशरण पंचशील का उच्चारण करवाकर बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी। वह स्थल आज दीक्षाभूमि के नाम से विख्यात है, प्रत्येक वर्ष विजयादशमी के अवसर पर लाखों की संख्या में डॉ. अम्बेडकर के अनुयायी उन्हें अपना श्रद्धासुमन अर्पित करने के लिए इकट्ठा होते हैं।

'मैं शिक्षा के महत्त्व को अच्छी तरह समझता हूं। निम्न स्तर के लोगों के

दीक्षा भूमि नागपुर

उत्थान की समस्या उनके आर्थिक स्तर से जोड़ी जाती है। यह भारी भूल है। भारत के सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए उन्हें खाना, कपड़ा देना और उच्च वर्ग की सेवा में लगा देना ही समस्या का हल नहीं है। कमजोर वर्ग की समस्या यह है कि उनके अंदर से हीनभावना की ग्रंथि निकाल दी जाए, जिसने उनका विकास अवरुद्ध कर रखा है, उन्हें दूसरों का गुलाम बना रखा है। उनके अंदर अपने लिए और अपने देश के लिए अपने जीवन की महत्ता की चेतना जागृत की जाए, जिसे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में क्रूरतापूर्वक लूट लिया गया है।''

डॉ. अम्बेडकर का उपर्युक्त चिन्तन उपर्युक्त समस्याओं के समाधान हेतु अर्थात् हीन भावना की ग्रंथि को समूल नष्ट करने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने विश्व के सभी प्रमुख धर्मों का गहराई से अध्ययन विश्लेषण करने के पश्चात् 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में अपने तकरीबन 5 लाख अनुयायियों के साथ 'बौद्ध धम्म' स्वीकार किया था। इस अवसर पर अपने उद्गार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा था- बुद्धिज़्म एक व्यापक धम्म है, बुद्धिज़्म का मुख्य लक्ष्य मानवता का उद्धार करना है। यह एक सामाजिक सिद्धांत है जो प्रज्ञा, करुणा और समता की शिक्षा देता है। यह धम्म न केवल इस देश की अपितु समस्त संसार की सेवा कर सकता है। विश्व शांति के लिए इस समय बुद्धिज़्म आवश्यक है। उन्होंने तब कहा था बुद्ध के अनुयायी शपथ लें कि हम स्वयं अपनी 'मुक्ति' के लिए ही नहीं अपने 'देश समाज' और 'दुनिया' को समुन्नत करने के लिए काम करेंगे। डॉ. अम्बेडकर महान देशभक्त थे वे नहीं चाहते थे कि वे किसी ऐसे धर्म को अपनाएं जिसकी जड़ें व संस्कृति विदेशी हो। धर्म मनुष्य के लिए आवश्यक है परन्तु वह मनुष्य केन्द्रित होना चाहिए। ऐसा धर्म जो मनुष्य को साधन बनाता हो, उन्हें कभी पंसद नहीं था। इसलिए उन्होंने 'बौद्ध धम्म' को ही स्वीकार किया। वे मानते थे कि बौद्ध धर्म ही अस्पृश्यों का मूल धर्म है। इस दृष्टि से वे 'बौद्ध धम्म' में जाने को अपने घर में वापस जाने की तरह मान रहे थे।

14 अक्टूबर 1956 को डॉ. अम्बेडकर द्वारा 'बौद्ध धम्म' को स्वीकार/अंगीकार करना यथास्थितिवाद के खिलाफ भावनात्मक क्रान्तिकारी प्रतिक्रिया तो थी ही, 'समतावाद-मानवतावाद' की ओर एक क्रान्तिकारी कदम भी था।

भवतु सब्ब मंगलम् !

(सुधीर हिलसायन)

''डॉ. अम्बेडकर महान देशभक्त थे वे नहीं चाहते थे कि वे किसी ऐसे धर्म को अपनाएं जिसकी जड़ें व संस्कृति विदेशी हो। धर्म मनुष्य के लिए आवश्यक है परन्तु वह मनुष्य केन्द्रित होना चाहिए। ऐसा धर्म जो मनुष्य को साधन बनाता हो, उन्हें कभी पंसद नहीं था। इसलिए उन्होंने 'बौद्ध धम्म' को ही स्वीकार किया। वे मानते थे कि बौद्ध धर्म ही अस्पृश्यों का मूल धर्म है। इस दृष्टि से वे 'बौद्ध धम्म' में जाने को अपने घर में वापस जाने की तरह मान रहे थे।''

पुस्तक अंश : बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-19

अनुसूचित जातियों की शिकायतें तथा सत्ता हस्तांतरण संबंधी महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार

■ डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

2
मंत्रिमंडलीय शिष्टमंडल (केबिनेट मिशन) तथा अछूत

I

मंत्रिमंडलीय शिष्टमंडल ने अछूतों की उपेक्षा कैसे की?

मंत्रिमंडलीय शिष्टमंडल ने अपने 10 मई के बयान में भारत में राजनीतिक गतिरोध के समाधान के लिए अंतरिम तथा दीर्घकालीन प्रस्ताव प्रस्तुत किए। उनके प्रस्तावों का सबसे अधिक कष्टदायी तथा विस्मयकारक पहलू अछूतों को भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक पृथक तथा अलग घटक के रूप में मानने से इंकार करना था। आयोग ने अछूतों की इतनी अधिक पूर्णतया उपेक्षा की है कि उन्होंने अपने लम्बे वक्तव्य में उनका एक बार भी उल्लेख नहीं किया है। मंत्रिमंडलीय आयोग ने अछूतों की किस हद तक उपेक्षा की है, यह बात निम्नलिखित से स्पष्ट हो जाएगी:-

(i) अछूतों को यह अधिकार नहीं दिया गया है कि वे सिखों तथा मुसलमानों की तरह अपने प्रतिनिधियों को केन्द्रीय कार्यपालिका में मनोनीत कर सकें। वर्तमान अंतरिम सरकार में, उनके पास अनुसूचित जातियों के दो प्रतिनिधि हैं, उनमें से एक की भी अनुसूचित जातियों के प्रति कोई निष्ठा या दायित्व नहीं हैं उनमें से एक कांग्रेस द्वारा नामित है तथा दूसरा मुस्लिम लीग द्वारा नामित है।

(ii) अंतरिम सरकार में अछूतों को प्रतिनिधित्व एक निश्चित कोटा में नहीं दिया गया जैसा कि मुसलमानों को दिया गया है। 1945 की शिमला कांफ्रेंस में इस बात पर सहमति हुई थी कि चौदह व्यक्तियों के मंत्रिमंडल में अनूसूचित जातियों के कम से कम दो सदस्य होने चाहिए। 1945 तथा 1946 के बीच व्यवहार में परिवर्तन का क्या कारण है, यह मालूम नहीं।

(iii) उनको संविधान सभा मे पृथक प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं दिया गया है।

मंत्रिमंडलीय शिष्टमंडल (कैबिनेट मिशन) का निर्णय महामहिम की सरकार की स्थापित नीति से दूर कैसे आया?

2. मंत्रिमंडलीय आयोग के निर्णय ने अछूतों के प्रति केवल एक गंभीर गलती ही नहीं की बल्कि यह उन सिद्धान्तों से भी दूर चला गया जो महामहिम की सरकार का भारतीय राजनीति के संबंध में तथा अछूतों की स्थिति के सम्बंध में मार्ग-निर्देशन करते थे।

(i) 1920 से पहले, भारत के शासन में संवैधानिक परिवर्तन ब्रिटिश सरकार ने अपने अधिकार से तथा अपनी स्वयं की इच्छा के अनुसार किए थे। 1920 में ही पहली बार वह अवसर आया था जब ब्रिटिश सरकार ने भारत का संविधान भारतीयों के साथ परामर्श करके बनाने का निर्णय किया। तदनुसार एक गोलमेज कांफ्रेंस बुलाई गई, जिसमें भारतीयों को आमंत्रित किया गया। भारतीय प्रतिनिधियों में अछूतों के प्रतिनिधि थे जिन्हें कांग्रेस या किसी अन्य राजनीतिक दल से पृथक तथा स्वतंत्र रूप में, अलग से, आमंत्रित किया गया था।

(ii) गोलमेज कांफ्रेंस में कांग्रेस के प्रतिनिधि श्री गांधी ने कहा, भारत के राष्ट्रीय जीवन में अछूतों को एक पृथक व अलग घटक/अंग के रूप में मान्यता देने का विरोध किया और यह दावा किया वे हिन्दुओं का भाग हैं और इसलिए वे पृथक प्रतिनिधित्व के हकदार नहीं हैं। ब्रिटिश सरकार ने गांधी के इस तर्क को अस्वीकार कर दिया और उन्होंने अपने परिनिर्णय द्वारा यह माना कि अछूत भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक पृथक घटक/अंग हैं और इसलिए वे उन्हीं सुरक्षा उपायों के हकदार है जिस प्रकार भारत के अन्य अल्पसंख्यक जैसे मुसलमान

तथा भारतीय इसाई आदि हैं।

(iii) ब्रिटिश सरकार, जून, 1945 में हुई शिमला कांफ्रेंस में इस सिद्धांत पर जमी रही। उस कांफ्रेंस में आमंत्रित भारतीयों में एक प्रतिनिधि अछूतों का था जिसे कांग्रेस या किसी अन्य राजनीतिक दल से अलग तथा स्वतंत्र रूप में आमंत्रित किया गया था।

(iv) यह कहा जा सकता है कि संविधान सभा में, जो 1942 के क्रिप्स प्रस्तावों का एक भाग थी, अछूतों के पृथक प्रतिनिधित्व के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी और इसलिए मंत्रिमंडलीय आयोग के वर्तमान प्रस्तावों में कोई अंतर नहीं किया गया है। इसका उत्तर यह है कि उनमें अंतर किया गया है। 1942 के क्रिप्स प्रस्तावों में, यह बात नहीं है कि अकेले अछूतों को ही पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। तथ्य यह है कि संविधान सभा में किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग को पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। परन्तु, मंत्रिमंडलीय आयोग की संविधान सभा के गठन में मुसलमानों तथा सिखों को पृथक मान्यता तथा पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है जिसे अछूतों के लिए नकार दिया गया है। इस भेदभाव के कारण व इस गलती के कारण ही अछूत शिकायत कर रहे हैं।

3. इस प्रकार, मंत्रिमंडलीय आयोग के प्रस्तावों की असमानता इस तथ्य में निहित है कि यह अछूतों को भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक पृथक घटक के रूप में मान्यता देने की नीति से अलग हट गया है और उनको पृथक मान्यता न देकर उनके साथ भेदभाव करता है जबकि मुसलमानों तथा सिखों को पृथक वर्ग के रूप में मान्यता देता है।

यह कहा जा सकता है कि संविधान सभा में, जो 1942 के क्रिप्स प्रस्तावों का एक भाग थी, अछूतों के पृथक प्रतिनिधित्व के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी और इसलिए मंत्रिमंडलीय आयोग के वर्तमान प्रस्तावों में कोई अंतर नहीं किया गया है। इसका उत्तर यह है कि उनमें अंतर किया गया है। 1942 के क्रिप्स प्रस्तावों में, यह बात नहीं है कि अकेले अछूतों को ही पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। तथ्य यह है कि संविधान सभा में किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग को पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। परन्तु, मंत्रिमंडलीय आयोग की संविधान सभा के गठन में मुसलमानों तथा सिखों को पृथक मान्यता तथा पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है जिसे अछूतों के लिए नकार दिया गया है। इस भेदभाव व गलती के कारण ही अछूत शिकायत कर रहे हैं।

महामहिम की सरकार द्वारा अछूतो को दिए गए वचनों को मंत्रिमंडलीय आयोग के निर्णय किस प्रकार रद्द कर देते हैं?

4. मंत्रिमंडलीय आयोग द्वारा अछूतों को एक पृथक घटक के रूप में मान्यता न देना उनको ब्रिटिश सरकार द्वारा तथा उसकी ओर से दिए गए वचनों के प्रतिकूल है। उनमें से कुछ उल्लेखनीय वचन नीचे दिए जा रहे हैं:-

(i) ''भारत की एकता के हित में, किसी संवैधानिक योजना में भारतीय रियासतों के शामिल करने की अनिवार्य आवश्यकता को हमें भूलना नहीं चाहिए।

मैं उनमें से केवल दो का – मुस्लिम अल्पसंख्यक तथा अनुसूचित जातियों का उल्लेख करना चाहता हूं। अल्पसंख्यकों को विगत समय में दी गई कुछ गारंटियां हैं; यह तथ्य है कि उनकी स्थिति की रक्षा की जानी चाहिए और उनको दी गई गारंटियों का सम्मान किया जाना चाहिए।''

– लॉर्ड लिनलिथगो द्वारा 10 जनवरी, 1940 को ओरिएंट क्लब, बम्बई में दिए गए भाषण से उद्धरण।

(ii)''ये दो मुख्य बातें हैं जो प्रकट हुई है। इन दो बातों के संबंध में महामहिम की सरकार अब मुझ से यह चाहता है कि मैं उनकी स्थिति को स्पष्ट करूं। पहली बात किसी संवैधानिक योजना के परिप्रेक्ष्य में अल्पसंख्यकों की स्थिति के संबंध में हैं....। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह (महामहिम की सरकार) भारत की शांति तथा कल्याण के लिए अपने उत्तरदायित्व को किसी ऐसी शासन प्रणाली को हस्तांतरित करने के विचार नहीं कर सकती जिसके प्राधिकार व सत्ता को भारत के राष्ट्रीय जीवन में बड़े तथा शक्तिशाली घटकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप में स्वीकार करने से

इंकार कर दिया जाए, वह ऐसी सरकार के प्रति समर्पण करने के लिए भी ऐसे घटकों पर जबरदस्ती भी नहीं कर सकती।''

-लॉर्ड लिनलिथगो द्वारा 8 अगस्त, 1940 को दिये गये भाषण से उद्धरण।

''कांग्रेस नेताओं ने....एक असाधारण संगठन, भारत में एक सबसे कुशल राजनीतिक तंत्र, का निर्माण किया है। काश, केवल उनको सफलता मिल जाती...। यदि कांग्रेस वास्तव में भारत के राष्ट्रीय जीवन के सभी मुख्य घटकों/अंगों के लिए बोल सकती, जैसा कि वह बोलने का दावा करती है, तब उनकी मांगें चाहे जितनी बड़ी होती, तब भी हमारी समस्या अनेक प्रकार से आज की अपेक्षा बहुत आसान हो जाती। यह सच है कि ब्रिटिश भारत में वह (कांग्रेस) संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा, अकेला दल है, परन्तु भारत के लिए बोलने के उसके दावे की वास्तविकता को भारत के जटिल राष्ट्रीय जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण घटकों द्वारा पूर्णतया अस्वीकार कर दिया है। ये अन्य लोग केवल स्वयं को संख्या की दृष्टि से अल्पसंख्यक मानने के अपने अधिकार पर ही जोर नहीं देते बल्कि वे भारत की किसी भी भावी नीति में पृथक घटक के रूप में माने जाने का दावा भी करते हैं। इन घटकों में प्रमुख मुस्लिम समुदाय है। भौगोलिक निर्वाचन-क्षेत्रों में बहुमत द्वारा निर्वाचित संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान से उनका कोई मतलब नहीं। वे यह दावा करते हैं कि किसी भी संवैधानिक विचार विमर्श में, बहुमत की कार्यवाही के विरुद्ध उनके अधिकार को एक अलग अस्तित्व के रूप में माना जाए। यही बात उस बड़े घटक पर लागू होती है जिसे अनुसूचित जातियों के रूप में जाना जाता है। उसकी ओर से श्री गांधी के महत्वपूर्ण प्रयास के बावजूद, ये लोग यह महसूस करते हैं कि एक समुदाय के रूप में वे हिन्दू समुदाय से, जिसका प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है, बाहर हैं।''

-माननीय श्री एल.एस. एमरी, सेक्रेट्री ऑफ स्टेट फॉर इंडिया, द्वारा 14 अगस्त, 1940 को हाउस ऑफ कामन्स में दिए गए भाषण से उद्धरण।

''इन समस्त कारणों को विस्तृत रूप में दोहराए बिना, मैं आपको यह स्मरण कराना चाहता हूं कि महामहिम की सरकार ने उस समय यह स्पष्ट किया था:-

(क) युद्ध के बाद सम्पूर्ण स्वतंत्रता का उनका प्रस्ताव एक ऐसे संविधान के निर्माण पर सशर्त रखा गया था जिसे भारत के राष्ट्रीय जीवन के मुख्य घटकों द्वारा स्वीकार किया जाए तथा महामहिम की सरकार के साथ आवश्यक संधि व्यवस्था की बातचीत द्वारा स्वीकृत हो।

(ख) युद्ध के दौरान, संविधान में कोई ऐसा परिवर्तन करना असंभव है, जिसका यह अभिप्राय हो कि केवल ऐसी 'राष्ट्रीय सरकार' ही जैसी आपने सुझाई है, केन्द्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी बनाई जा सकती है। इन शर्तों का उद्देश्य इस बात को सुनिश्चित करना है कि दलित वर्गों के तथा भारतीय रियासतों के प्रति संधि दायित्वों तथा जातीय धार्मिक अल्पसंख्यकों के हित की रक्षा करने के लिए कर्तव्य को पूरा करें।''

-लॉर्ड वेवल द्वारा श्री गांधी को 15 अगस्त, 1944 को लिखे गए पत्र से उद्धरण।

5. अछूतों को पृथक प्रतिनिधित्व न देने का मंत्रिमंडलीय आयोग का प्रस्ताव संबंधित तथ्यों के ईमानदारी से परीक्षण करने के बाद उसका व्यक्तिगत व ईमानदार निर्णय पर पहुंचने का परिणाम नहीं था। इसके विपरीत, आयोग ने जो कुछ किया है वह श्री गांधी के पूर्वाग्रह का समर्थन करना है। श्री गांधी, अछूतों को भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक पृथक घटक के रूप में मान्यता देने के प्रबल विरोधी हैं। उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में उनको पृथक मान्यता देने का विरोध किया। जब उन्हें यह पता चला कि उनके विरोध के बावजूद भी उनको श्री रेमजे मैक्डोनल्ड के साम्प्रदायिक परिनिर्णय द्वारा एक पृथक घटक के रूप में मान्यता दे दी गई है, तो उन्होंने धमकी दी कि यदि अछूतों की पृथक मान्यता को वापिस न लिया गया तो आमरण अनशन कर दूंगा। फिर 1945 में प्रथम शिमला सम्मेलन में श्री गांधी ने जब यह देखा कि महामहिम की सरकार ने अछूतों को पृथक मान्यता दे दी है, तो उन्होंने उसका विरोध किया। मंत्रिमंडलीय आयोग अपने प्रस्तावो को सफल बनाने के लिए उत्सुक था। ऐसा उस समय तक संभव नहीं था जब तक उसको श्री गांधी की स्वीकृति न मिलती। श्री गांधी ने अपनी कीमत मांगी और आयोग ने वह दे दी। वह कीमत थी अछूतों के पृथक राजनीतिक अस्तित्व का बलिदान करना। वास्तव में, इससे भी आगे जाकर यह कहा जा सकता है कि मंत्रिमंडलीय आयोग के प्रस्तावों का जहां तक अल्पसंख्यक वर्गों से संबंध है, वे श्री गांधी के सूत्र का ही प्रतिरूप थे और कुछ नहीं, जिसके संबंध में उन्होंने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में चर्चा की थी। श्री गांधी ने कहा कि राजनीतिक उद्देश्य के लिए वह केवल तीन समुदायों/सम्प्रदायों (1) हिन्दू, (2) मुसलमान तथा (3) सिखों को ही

मान्यता देंगे। आयोग का सूत्र श्री गांधी के सूत्र की ही मात्र प्रतिलिपि है। इसका और अन्य स्पष्टीकरण नहीं है।

III

मंत्रिमंडलीय आयोग द्वारा अपने निर्णय के औचित्य में बताए गए आधार

6. अछूतों को एक पृथक घटक के रूप में न मानने के अपने निर्णय के औचित्य के लिए, मंत्रिमंडलीय आयोग ने प्रान्तीय विधान सभाओं के फरवरी, 1948 में हुए चुनावों के परिणामों पर निर्भर किया है। मंत्रिमंडलीय आयोग के प्रस्ताव पर संसद में 18 जुलाई, 1948 को हुए वादविवाद के दौरान, आयोग के सदस्य ने निम्नलिखित बातें प्रस्तुत करने का प्रयास किया है:-

(i) कि चुनाव में अछूतों के लिए आरक्षित सभी स्थानों को कांग्रेस ने जीता, इसलिए कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व देने के लिए कोई औचित्य नहीं था।

(ii) कि अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ का प्रभाव और मेरा अपना प्रभाव केवल बम्बई तथा मध्य प्रान्त तक ही सीमित था।

इन आधारों की निरर्थकता

7. ये नितांत असंगत तर्क हैं और निकट से तथा ईमानदारी से विचार करने पर ये खरे नहीं उतरेंगे। प्रारंभ में ही, मंत्रिमंडलीय आयोग ने कांग्रेस के प्रतिनिधि स्वरूप का मूल्यांकन करने के लिए चुनाव के परिणामों को एक आधार के रूप में अपनाने की भारी गलती की है। ऐसा करने में, आयोग ने निम्नलिखित परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा:-

(i) हिन्दू मतदाता तमाम युद्ध काल के दौरान, पूर्णतया ब्रिटिश सरकार के विरोधी थे और यद्यपि उन्होंने युद्ध में काम किया, परन्तु यह काम इच्छा से नहीं किया। कांग्रेस पार्टी, जो ब्रिटिश विरोधी थी और युद्ध-प्रयासों में असहयोगी रही थी, हिन्दू मतदाताओं की प्रीति-भाजन थी। अन्य दलों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, को चुनाव में इसलिए हानि हुई थी क्योंकि ब्रिटिश सरकार के समर्थक थे और युद्ध प्रयास में उन्होंने सहयोग किया था।

मंत्रिमंडलीय आयोग ने रिटर्निंग अफसरों तथा पोलिंग अफसरों के, जो कि सवर्ण हिन्दू थे, कांग्रेस का विरोध करने वाले अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों के विरोधी रवैये को ध्यान में नहीं रखा। उन्होंने उनके नॉमिनेशन पेपर (नामजदगी पर्चे) अस्वीकार कर दिए और उनको मतपत्र जारी करने से इंकार कर दिया। मंत्रिमंडलीय आयोग ने आतंकवाद तथा धमकी को ध्यान में नहीं रखा जो अछूत मतदाताओं को सवर्ण हिन्दुओं द्वारा इस आधार पर दी गई क्योंकि वे कांग्रेस उम्मीदवार के पक्ष में मत देने के लिए तैयार नहीं थे। आगरा शहर में अछूतों के 40 घर जला दिए गए।

(ii) चुनाव के लिए निर्धारित तारीख से ठीक पहले, वायसराय तथा कमांडर- इन-चीफ ने आई.एन.ए. के व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया। कांग्रेस ने आई.एन.ए. के व्यक्तियों का पक्ष लिया और उसे चुनाव का मुद्दा बनाया। यह मुकदमा मुख्य कारक था जिसने कांग्रेस के प्रभाव को बढ़ाया, जिसकी अवनति हो रही थी।

(iii) जिस मुद्दे पर चुनाव लड़ा गया, वह स्वतंत्रता तथा भारत छोड़ो था। भारत के भावी संविधान का स्वरूप कभी भी कोई मुद्दा नहीं था। यदि वह मुद्दा होता तो कांग्रेस को कभी भी वह बहुमत न मिलता जो उसने प्राप्त किया।

(iv) मंत्रिमंडलीय आयोग ने रिटर्निंग अफसरों तथा पोलिंग अफसरों के, जो कि सवर्ण हिन्दू थे, कांग्रेस का विरोध करने वाले अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों के विरोधी रवैये को ध्यान में नहीं रखा। उन्होंने उनके नॉमिनेशन पेपर (नामजदगी पर्चे) अस्वीकार कर दिए और उनको मतपत्र जारी करने से इंकार कर दिया। मंत्रिमंडलीय आयोग ने आतंकवाद तथा धमकी की उस मात्रा को ध्यान में नहीं रखा जो अछूत मतदाताओं को सवर्ण हिन्दुओं द्वारा इस आधार पर दी गई क्योंकि वे कांग्रेस उम्मीदवार के पक्ष में मत देने के लिए तैयार नहीं थे। आगरा शहर में अछूतों के 40 घर जला दिए गए। बम्बई में एक अछूत की हत्या कर दी गई और सैकड़ों गांवों में मुफस्सल अछूत मतदाताओं को मतदान केन्द्रों तक नहीं जाने दिया गया। नागपुर में, एक पुलिस अधिकारी कांग्रेस का इतना अधिक हिमायती हो गया कि उसने दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) की अनुमति के बिना अछूत मतदाताओं को डराने के लिए अछूतों की एक भीड़ पर गोली चलाई। समस्त भारत में ऐसे असंख्य मामले हुए।

8. यदि मंत्रिमंडलीय आयोग इन परिस्थितियों को ध्यान में रखता तो यह महसूस करता कि चुनावों में कांग्रेस को सफलता केवल लाभकारी परिस्थितियों के कारण मिली। ऐसी परिस्थितियों में हुए चुनावों के परिणामों को संविधान सभा में अछूतों को पृथक प्रतिनिधित्व न देने के लिए औचित्य के रूप में नहीं मानना चाहिए था।

आयोग ने अपने निर्णय के लिए एक गलत मापदंड को कैसे अपनाया?

9. आयोग द्वारा यह निर्णय करने के लिए कि कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व करती है या नहीं, जो मापदंड अपनाया गया वह यह था कि अंतिम चुनाव में कांग्रेस द्वारा अछूतों के लिए आरक्षित सीटों में से कितनी सीटें जीती गईं। यह मापदंड एक झूठा व गलत मापदंड था क्योंकि अंतिम चुनावों का निर्धारण हिन्दू मतों से होता हैं आयोग द्वारा जिस सच्चे मापदंड को अपनाया जाना चाहिए था वह इस बात का पता लगाना था कि अछूतों ने किस प्रकार मतदान किया, कांग्रेस के पक्ष में उनके द्वारा कितने मत डाले गए और कांग्रेस के विरोध में उनके कितने मत गए। इसका निर्णय केवल प्राथमिक चुनावों के परिणामों से किया जा सकता है अंतिम चुनावों के परिणामों से नहीं, क्योंकि प्राथमिक चुनाव में केवल अछूत ही मतदान करते हैं। यदि प्राथमिक चुनावों के परिणामों का आधार माना जाए तो मंत्रिमंडलीय आयोग का निर्णय हास्यापद व निरर्थक था और तथ्यों के प्रतिकूल था क्योंकि प्राथमिक चुनावों में पड़े केवल 28 प्रतिशत मत ही कांग्रेस के पक्ष में तथा 72 प्रतिशत विरोध में डाले गए थे।

10. यह कहा जाता है कि यदि अछूत यह महसूस करते थे कि वे कांग्रेस में नहीं हैं तो उन्हें अपने लिए आरक्षित 151 सीटों में से प्रत्येक सीट के लिए प्राथमिक चुनाव कराना चाहिए था। वास्तव में, प्राथमिक चुनाव समस्त भारत केवल 43 सीटों के लिए थे। अछूतों ने शेष 108 सीटों के लिए प्राथमिक चुनाव के लिए जोर क्यों नहीं दिया? यह तर्क निम्नलिखित बातों के कारण निरर्थक है:-

(i) प्राथमिक चुनाव अनिवार्य नहीं होता, यह केवल उसी स्थिति में अनिवार्य होता है जब एक सीट के लिए लड़ने वाले चार से अधिक उम्मीदवार हो। महसूस नहीं किया गया है कि जो व्यक्ति प्राथमिक चुनाव के लिए खड़ा होता है उसके लिए अंतिम चुनाव के लिए खड़ा होना भी आवश्यक होता है। अछूतों के लिए दोहरे चुनाव के खर्च के भार को वहन करने की अक्षमता के कारण, प्राथमिक चुनाव के लिए अछूत समुदायों के सदस्यों को खड़ा करना बहुत कठिन होता है। इस तथ्य को कि केवल 43 सीटों के लिए ही चुनाव हुए, इस निष्कर्ष का आधार नहीं बनाया जा सकता कि अछूत कांग्रेस से पृथक होने का दावा नहीं करते।

(ii) कांग्रेस से ही यह पूछा जाना चाहिए कि उसने प्राथमिक चुनावों में प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में चार उम्मीदवार क्यों नहीं खड़े किए। क्योंकि यदि कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है, तो उसे प्रत्येक चुनाव क्षेत्र में कांग्रेस टिकट पर चार उम्मीदवारों से अधिक उम्मीदवार खड़े करने चाहिए थे और 151 चुनाव क्षेत्रों में से प्रत्येक में प्राथमिक चुनाव कराने चाहिए थे और अंतिम चुनाव में आने से अन्य प्रत्येक दल को बाहर कर देना चाहिए था। कांग्रेस ने यह नहीं किया। इसके विपरीत, 43 प्राथमिक चुनावों में भी कांग्रेस ने प्रत्येक चुनाव क्षेत्र में केवल एक उम्मीदवार खड़ा किया क्योंकि उसका प्रथम चार के अंदर आने और हिन्दू मतों से अंतिम चुनाव में जीतने की कम संभावना थी। इससे यह पता चलता है कि कांग्रेस यह जानती थी कि अछूतों का कांग्रेस में विश्वास नहीं था।

(iii) केवल 1937 में ही अछूतों को पहली बार मतदान करने का अधिकार मिला था और 1937 के बाद ही अछूतों ने अपने आपको चुनाव कराने के लिए संगठित करना शुरू किया था। कांग्रेस चुनावों में अनुसूचित जाति संघ से बढ़कर सिद्ध हुई, केवल इस बात से यह निष्कर्ष निकाल लेना गलत है कि अछूत कांग्रेस के साथ है। मंत्रिमंडलीय आयोग को चुनावों के परिणामों से अनुसूचित जाति संघ के विपरीत कोई निष्कर्ष निकालते समय चुनाव लड़ने में अनुसूचित जाति संघ तथा कांग्रेस की असमान शक्ति को ध्यान में रखना चाहिए था।

मंत्रिमंडलीय आयोग द्वारा अपने निर्णयों के औचित्य में बताए गए अन्य आधारों की निरर्थकता

11. मंत्रिमंडलीय आयोग के सदस्यों ने तर्क दिया कि डाक्टर अम्बेडकर का समर्थन जातियों में केवल बम्बई प्रेसिडेंसी तथा मध्य प्रान्त तक ही सीमित था। इस बयान का कोई आधार नहीं है। अनुसूचित जाति संघ अन्य प्रान्तों में भी कार्य कर रहा है और उसने उसमें उल्लेखनीय व महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। वह सफलता यदि अधिक बड़ी नहीं तो बम्बई तथा मध्य प्रांत के समान ही बड़ी है। इस बयान को देते समय, आयोग ने उस एकाकी विजय को ध्यान में नहीं रखा है जो डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा के चुनाव में प्राप्त की थी। वह बंगाल प्रांत विधान सभा से उम्मीदवार के रूप में

खड़े हुए। जहां तक सामान्य सीटों का संबंध है, चुनाव में वह सबसे ऊपर रहे और कांग्रेस पार्टी के नेता, शरत चन्द्र बोस को भी हरा दिया। यदि डॉ. अम्बेडकर का बम्बई तथा मध्य प्रान्त से बाहर प्रभाव न होता, तो वह बंगाल से कैसे चुने जाते? इसके अतिरिक्त, यह भी याद रखना चाहिए कि प्रान्तीय सभा में 30 सीट हैं। 30 में से 28 पर कांग्रेस टिकट वाले उम्मीदवार चुने गए। जो दो उम्मीदवार उनके दल के थे उनमें से एक चुनाव के दिन बीमार पड़ गया। फिर भी डॉ. अम्बेडकर चुनाव में शीर्ष पर रहे। यदि बंगाल के अनुसूचित जाति सदस्य जो कांग्रेस के टिकट पर चुने गए थे, उनके पक्ष में मत न देते तो यह नहीं हो सकता था। यह भी याद रखना चाहिए कि बंगाल में अनुसूचित जातियों का संबंध उस समुदाय की जाति से नहीं है जिससे डॉ. अम्बेडकर संबंधित है। इससे यह पता चलता है कि अनुसूचित जातियों के वे सदस्य भी जिनका संबंध कांग्रेस से है, और जिनका संघ उनके समुदाय/जाति से नहीं है, उन्हें अनुसूचित जातियों के नेता के रूप में मानते हैं यह बात आयोग के सदस्यों द्वारा दिए गए बयान को असत्य प्रमाणित करती हैं।

12. मंत्रिमंडलीय आयोग के सदस्यों ने तर्क दिया कि संविधान सभा के गठन में एकरूपता को बनाए रखने के लिए अछूतों के मामले में उनको अंतिम चुनाव के परिणामों को अपनाना पड़ा, जैसा कि वे अन्य समुदायों/जातियों के मामले में कर चुके थे। यह तर्क एक विशेष प्रकार की वकालत करने का रूप है जिसमें कोई दम नहीं है। आयोग जानता था कि सिखों, मुसलमानों और भारतीय ईसाइयों का अंतिम चुनाव, पृथक निर्वाचक मंडलों द्वारा हुआ था। अनुसूचित जातियों का अंतिम चुनाव, पृथम निर्वाचकों द्वारा नहीं हुआ था। फलतः एकरूपता के लिए आयोग को संविधान सभा में अछूतों को प्रतिनिधित्व देने के लिए प्राथमिक चुनाव के परिणाम को ध्यान में रखना चाहिए था। आयोग ऐसा करने के लिए बाध्य था क्योंकि वाद-विवाद में स्टेफोर्ड क्रिप्स ने यह स्वीकार किया था कि अछूतों के चुनाव की प्रणाली जो पूना समझौते द्वारा निर्धारित की गई थी, असमान थी आयोग ने अपने निर्णय के लिए फिर उसे क्यों अपनाया?

मंत्रिमंडलीय आयोग के सदस्यों ने तर्क दिया कि संविधान सभा के गठन में एकरूपता को बनाए रखने के लिए अछूतों के मामले में उनको अंतिम चुनाव के परिणामों को अपनाना पड़ा, जैसा कि वे अन्य समुदायों/जातियों के मामले में कर चुके थे। यह तर्क एक विशेष प्रकार की वकालत करने का रूप है जिसमें कोई दम नहीं है। आयोग जानता था कि सिखों, मुसलमानों और भारतीय ईसाइयों का अंतिम चुनाव, पृथक निर्वाचक मंडलों द्वारा हुआ था। अनुसूचित जातियों का अंतिम चुनाव, पृथक निर्वाचकों द्वारा नहीं हुआ था। फलतः एकरूपता के लिए आयोग को संविधान सभा में अछूतों को प्रतिनिधित्व देने के लिए प्राथमिक चुनाव के परिणाम को ध्यान में रखना चाहिए था। आयोग ऐसा करने के लिए बाध्य था क्योंकि वाद-विवाद में स्टेफोर्ड क्रिप्स ने यह स्वीकार किया था कि अछूतों के चुनाव की प्रणाली जो पूना समझौते द्वारा निर्धारित की गई थी, असमान थी। आयोग ने अपने निर्णय के लिए फिर उसे क्यों अपनाया?

IV

अछूतों को आसन्न खतरे से बचाने के लिए क्या किया जा सकता हैं?

13. मंत्रिमंडलीय आयोग में संविधान सभा के गठन द्वारा अछूतों को पूर्णतया उन सवर्ण हिन्दुओं की दया पर छोड़ दिया है जिनका इसमें पूर्ण बहुमत है। अछूत यह चाहते हैं कि महामहिम की सरकार साम्प्रदायिक समझौते द्वारा उनको दिए गए पृथक निर्वाचन मंडल की पुनः व्यवस्था की जाए तथा पूना पैक्ट का निराकरण किया जाए जो कि श्री गांधी द्वारा उनके ऊपर अपने आमरण अनशन से बलात लादा गया था। हिन्दू इसका विरोध अवश्य करेंगे। इस आलोचना के उत्तर में कि उनको हिन्दू बहुमत की दया पर छोड़ दिया गया है, मंत्रिमंडलीय आयोग, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के साधन के रूप में, अल्पसंख्यकों पर एक सलाहकार समिति बनाने के अपने प्रस्ताव का प्रचार करता रहा है। जो भी व्यक्ति सलाहकार समिति की शक्तियों तथा गठन की जांच करेगा, पायेगा कि यह समिति बेकार से भी बदत्तर है।

(i) वर्तमान रचना में यह संविधान सभा

का निस्तेज प्रतिबिम्ब है। हिन्दुओं का इस पर भी संविधान सभा की तरह ही अधिकार होगा।

(ii) यह तथ्य कि संविधान सभा में तथा कांग्रेस की सद्भावना द्वारा निर्वाचित सलाहकार समिति में कुछ संख्या अछूत सदस्यों की होगी, उनके लिए कुछ भी सहायक नहीं हो सकता, क्योंकि संविधान सभा तथा सलाहकार समिति के अछूत सदस्य केवल हिन्दुओं की ही कठपुतली हैं।

(iii) सलाहकार समिति द्वारा अल्पसंख्यकों की रक्षा से संबंधित प्रश्नों पर निर्णयों को मात्र बहुमत पर ही छोड़ दिया जाता है, जिसका अर्थ यह है कि निर्णय सवर्ण हिन्दुओं द्वारा लिया जाएगा और उसे अल्पसंख्यकों पर लादा जाएगा।

(iv) सलाहकार समिति के निर्णय भले अनुकूल ही हों, पर वे सिफारिश ही होंगे, उससे अधिक नहीं। वे संविधान सभा पर बाध्यकारी नहीं हैं।

14. सलाहकार समिति की युक्ति, इस प्रकार से, यदि एक छल नहीं तो एक कपट है और इस पर यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि अल्पसंख्यकों के हित के लिए हिन्दू बहुमत द्वारा जो शरारत की जाती है, वह उसका विरोध करेगी। हिन्दू बहुमत की एकमात्र अछूतों के प्रति ही दुर्भावना है और यह प्रतीत होता है कि उन्होंने अछूतों को उस राजनीतिक सुरक्षा से वंचित रखने का निश्चय कर लिया है जो कि बहुमत के कारण मिलनी चाहिए। यह बात 25 जून, 1946 को कांग्रेस द्वारा सम्बोधित पत्र (पत्राचार 6861 में मद 21) से प्रकट होती है। उस पत्र में कांग्रेस ने यह पक्ष लिया है कि अछूत अल्पसंख्यक नहीं हैं। यह एक विस्मयकारक तर्क है। क्योंकि ''हरिजन'' नामक 21 अक्तूबर, 1939 के साप्ताहिक पत्र में ही श्री गांधी ने स्वयं स्वीकार किया है कि भारत में अछूत ही केवल वास्तविक अल्पसंख्यक हैं। इस प्रकार कांग्रेस ने पूर्ण कलाबाजी की है। अब कांग्रेस द्वारा लिया गया आधार, भारत सरकार अधिनियम 1935 में निहित सिद्धांतों के विपरीत है जो उनको अल्पसंख्यक मानते हैं। यदि कांग्रेस अछूतों को यह नहीं मानती कि वे अछूत हैं, तो यह संभव है कि संविधान सभा उनको वह सुरक्षा प्रदान करने से इंकार कर दे जो वह अन्य अल्पसंख्यकों को देने के लिए सहमत है। इसलिए सलाहकार समिति अछूतों को खतरे से नहीं बचा सकती।

15. अतएव संसद को यह देखने के लिए हस्तक्षेप करना चाहिए कि अछूतों की स्थिति जोखिम में न पड़ जाए। संसद को यह केवल इस कारण नहीं करना चाहिए क्योंकि उसने वचन दिए हैं, बल्कि इस तथ्य के कारण भी करना चाहिए कि संविधान सभा के वादविवाद की पुष्टि नहीं की जाती।

16. संसद क्या कर सकती है? अछूत यह चाहेंगे कि अंतरिम सरकार का संबंध में उनके साथ जो गलती की गई है उसका सुधार किया जाए। वे अपना कोटा निश्चित करना चाहेंगे। वे यह चाहेंगे कि कार्यकारिणी परिषद में उनके प्रतिनिधि नामित किए जाएं। ये अधिकार कोई नए दावे नहीं है। वे अछूतों के प्रदत्त अधिकार हैं जिन्हें 1945 की शिमला कांफ्रेंस में मान्यता दी गई थी। वे यह महसूस करते है कि इस गलती को सुधारना अब कठिन हो सकता है, परन्तु यदि परिस्थितियां बदलें और सरकार का पुनर्गठन हो तो वे यह आशा करते हैं कि संसद इस गलती को ठीक करने के लिए महामहिम की सरकार पर दवाब डाले।

17. अछूतों को उनकी राजनीतिक सुरक्षा से वंचित रखने के लिए दृढ़ संकल्प सवर्ण हिन्दुओं के बहुमत व प्रभाव वाली संविधान सभा से अछूतों को पहुंची हानि व क्षति से बचाने के लिए काफी किया जा सकता है। इस हानि को रोकने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:

(i) महामहिम की सरकार पर यह दबाव डाला जाए कि वह यह घोषणा करे कि वह अछूतों को अल्पसंख्यक मानती है।

कांग्रेस ने अपने 25 जून, 1946 के पत्र (पृष्ठ 6861 में मद 21) में जो आधार/पक्ष लिया है उसकी दृष्टि से यह आवश्यक है। यह इसलिए और भी आवश्यक है क्योंकि कांग्रेस को वायसराय ने, दिनांक 27 जून, 1946 के उत्तर में (पत्राचार संख्या 6861 में मद 38) कांग्रेस के इस विवाद को कि अछूत अल्पसंख्यक नहीं हैं निश्चित रूप से नकारने में टालमटोल की है। यदि सरकार पर घोषणा करने के लिए अब दबाव नहीं डाला गया तो अछूतों को दो प्रकार से हानि होगी।

(क) हिन्दुओं के प्रभुत्व वाली संविधान सभा उनको अल्पसंख्यक का अधिकार देने से इंकार कर देगी।

(ख) महामहिम की सरकार इस आधार पर उनके बचाव के लिए आगे न आने को स्वतंत्र होगी कि वह अछूतों को अल्पसंख्यक मानने के लिए वचनबद्ध नहीं है।

(ii) यह घोषणा करने के लिए दबाव डाला जाए कि क्या महामहिम की सरकार एक व्यवस्था तंत्र स्थापित करेगी, यदि हां तो किस किस्म का जो इस बात की जांच करे कि क्या संविधान सभा द्वारा निर्मित अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षाएं पर्याप्त तथा वास्तविक हैं या नहीं।

(क) दिनांक 25 मई, 1946 के अपने पूरक विवरण (बयान) (पत्राचार 6835) में मंत्रिमंडलीय आयोग यह कहता है:-

“जब संविधान सभा अपना श्रम पूरा कर लेगी, महामहिम की सरकार संसद से ऐसी कार्यवाही की सिफारिश करेगी जो भारत की जनता की प्रभुसत्ता के लिए आवश्यक हो, परन्तु केवल दो मामलों के अधीन, जिनका उल्लेख वक्तव्य में है और जिनके विषय में हमारा विश्वास है कि विवादास्पद नहीं हैं, अर्थात, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त व्यवस्था (वक्तव्य का पैरा 20) तथा सत्ता-हस्तांतरण से उत्पन्न मामलों को शामिल करने के लिए महामहिम की सरकार के साथ संधि करने की इच्छा (वक्तव्य का पैरा 22)”

इस पैरा के पीछे का विचार बिल्कुल स्पष्ट नहीं हैं। महामहिम की सरकार पर इस बात को स्पष्ट करने के लिए दबाव डाला जाए कि उसकी मंशा क्या है?

(ख) यदि 'मामलों के अधीन' शब्दों का अर्थ यह है कि महामहिम की सरकार अपने पास यह अधिकार रखती है कि संविधान सभा द्वारा निर्मित अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षाओं की वह जांच करने का अधिकार रखती है ताकि यह पता चल सके कि क्या वे पर्याप्त तथा वास्तविक हैं, तो महामहिम की सरकार पर यह दबाव देना आवश्यक है कि वह यह बताएं कि ऐसी जांच के लिए उसका क्या तंत्र बनाने का प्रस्ताव है। अल्पसंख्यक समुदायों से साक्षियों की जांच करने के लिए एक शक्ति सम्पन्न संयुक्त संसदीय समिति का तंत्र सबसे उपयुक्त होगा। इसके लिए एक पूर्वोदाहरण है। जब भारत सरकार अधिनियम 1935 बन रहा था तो एक संयुक्त संसदीय समिति नियुक्त की गई थी। संविधान सभा की रिपोर्ट पर कार्यवाही में पूर्वोदाहरण का अनुसरण करने में कोई गलती नहीं होगी।

(iii) महामहिम की सरकार पर यह दबाव डाला जाए कि वह यह घोषणा करे कि क्या वह संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान के लिए आग्रह करेगी जिसमें भावी भारतीय विधायिका द्वारा मात्र बहुमत से अल्पसंख्यकों की सुरक्षा को नष्ट करने की शक्ति को सीमित करने वाला अनुच्छेद हो।

(क) न तो 16 मई, 1946 के मंत्रिमंडलीय आयोग के प्रथम वक्तव्य में और न 25 मई, 1946 के पूरक विवरण में, स्वतंत्र भारत की विधायिका के विरुद्ध व्यवस्था करने, संविधान को बदलने तथा अल्पसंख्यकों की सुरक्षा से संबंधित अनुच्छेद को रद्द करने की बात है। संसद में सुरक्षा की शुरुआत करने का कोई लाभ नहीं है, यदि इन सुरक्षाओं को भारतीय विधायिका द्वारा नष्ट किया जा सकता हो। ऐसी कार्यवाही के विरुद्ध एकमात्र रक्षोपाय यह आश्वस्त करना है कि संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान में ऐसे अनुच्छेद हों जो भारतीय विधायिका की सांविधिक शक्तियों पर सीमा व प्रतिबंध लगाते हों और अल्पसंख्यक रक्षोपायों में परिवर्तन करने से पहले पूरी की जाने वाली पूर्ववर्ती शर्तों का निर्धारित करते हों। ऐसी व्यवस्था व प्रावधान संयुक्त राज्य अमरीका तथा आस्ट्रेलिया के संविधान में विद्यमान हैं।

(ख) यद्यपि यह अल्पसंख्यकों के लिए अत्यावश्यक महत्व का मामला है, फिर भी मंत्रिमंडलीय आयोग ने इस विषय पर कोई विचार नहीं किया है। महामहिम की सरकार इस प्रश्न के संबंध में क्या करेगी इस बात को बताने के लिए इस पर दबाव डालना आवश्यक है।

-बी.आर. अम्बेडकर

(समाप्त)

न तो 16 मई, 1946 के मंत्रिमंडलीय आयोग के प्रथम वक्तव्य में और न ही 25 मई, 1946 के पूरक विवरण में, स्वतंत्र भारत की विधायिका के विरुद्ध व्यवस्था करने, संविधान को बदलने तथा अल्पसंख्यकों की सुरक्षा से संबंधित अनुच्छेद को रद्द करने की बात है। संसद में सुरक्षा की शुरुआत करने का कोई लाभ नहीं है, यदि इन सुरक्षाओं को भारतीय विधायिका द्वारा नष्ट किया जा सकता हो। ऐसी कार्यवाही के विरुद्ध एकमात्र रक्षोपाय यह आश्वस्त करना है कि संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान में ऐसे अनुच्छेद हों जो भारतीय विधायिका की सांविधिक शक्तियों पर सीमा व प्रतिबंध लगाते हों और अल्पसंख्यक रक्षोपायों में परिवर्तन करने से पहले पूरी की जाने वाली पूर्ववर्ती शर्तों को निर्धारित करते हों।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित
'मन की बात' कार्यक्रम में प्रधानमंत्री द्वारा उद्बोधन

मेरे प्यारे देशवासियो,

आप सबको नमस्कार। फिर एक बार, मन की बातें करने के लिए, आपके बीच आने का मुझे अवसर मिला है। सुदूर दक्षिण में लोग ओणम के पर्व में, रंगे हुए हैं और कल पूरे देश ने रक्षाबंधन का पावन पर्व मनाया। भारत सरकार ने, सामाजिक सुरक्षा को लेकर कई नई-नई योजनायें, सामान्य मानवों के लिए लागू की हैं। मुझे ख़ुशी है कि बहुत कम समय में, व्यापक प्रमाण में, सबने इन योजनाओं को स्वीकारा है।

मैंने एक छोटी सी गुज़ारिश की थी कि रक्षाबंधन के पर्व पर हम अपनी बहनों को ये सुरक्षा योजना दें। मेरे पास जो मोटी-मोटी जानकारी आई है कि योजना आरम्भ होने से अब तक ग्यारह करोड़ परिवार इस योजना से जुड़े हैं। और मुझे ये भी बताया गया कि, क़रीब-क़रीब आधा लाभ, माताओं-बहनों को मिला है। मैं इसे शुभ संकेत मानता हूं। मैं सभी माताओं-बहनों को रक्षाबंधन के पावन पर्व की अनेक-अनेक शुभकामनाएं भी देता हूँ।

आज जब मैं आपसे बात कर रहा हूं, जन-धन योजना को एक वर्ष पहले बड़े पैमाने पर हाथ में लिया गया था। जो काम साठ साल में नहीं हुआ, वो इतने कम समय में होगा क्या? कई सवालिया निशान थे। लेकिन मुझे आज ख़ुशी है कि इस योजना को लागू करने से संबंधित सरकार की सभी इकाइयों ने, बैंक की सभी इकाइयों ने, जी-जान से सब जुट गये, सफ़लता पाई और अब तक मेरी जानकारी के अनुसार करीब पौने अठारह करोड़ बैंक खाते खोले गए। सत्रह करोड़

चौहत्तर लाख। मैंने गरीबों की अमीरी भी देखी। ज़ीरो बैलेंस से खाता खोलना था लेकिन गरीबों ने बचत करके, सेविंग करके बाइस हज़ार करोड़ की राशि जमा करवाई। अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा, बैंकिंग क्षेत्र भी है और ये व्यवस्था ग़रीब के घर तक पहुँचे इसलिए बैंक-मित्र की योजना को भी बल दिया है। आज सवा लाख से भी ज्यादा बैंक-मित्र देश भर में काम कर रहे हैं। नौजवानों को रोज़गार भी मिला है। आपको जानकर के ख़ुशी होगी कि इस एक वर्ष में, Banking sector, अर्थव्यवस्था और ग़रीब आदमी - इनको जोड़ने के लिए एक लाख इकत्तीस हज़ार Financial Literacy कैम्प लगाये गए हैं। सिर्फ़ खाते खोलकर के अटक नहीं जाना है और अब तो कई हजारों लोग इस जन-धन योजना के तहत overdraft लेने के हक़दार भी बन गए और उन्होंने लिया भी। और ग़रीब को बैंक से पैसा मिल सकता है ये विश्वास भी पैदा हुआ। मैं फिर एक बार, संबंधित सब को बधाई देता हूं और बैंक के अकाउंट खोलने वाले सभी, ग़रीब से ग़रीब भाइयों-बहनों को भी आग्रह करता हूं, कि, आप बैंक से नाता टूटने मत दीजिये। ये बैंक आपकी है, आपने इसको अब छोड़ना नहीं चाहिये। मैं आप तक लाया हूं, अब उसको पकड़ के रखना आपका काम है। हमारे सबके खाते सक्रिय होने चाहिये। आप ज़रूर करेंगे, मुझे विश्वास है।

पिछले दिनों गुजरात की घटनाओं ने, हिंसा के तांडव ने, सारे देश को बेचैन बना दिया और स्वाभाविक है कि गांधी और सरदार की भूमि पर कुछ भी हो जाए तो देश को सबसे पहले सदमा पहुंचता है, पीड़ा होती है। लेकिन बहुत ही कम समय में गुजरात के प्रबुद्ध, सभी मेरे नागरिक भाइयों और बहनों ने परिस्थिति को संभाल लिया। स्थिति को बिगड़ने से रोकने में सक्रिय भूमिका निभाई और फिर एक बार शांति के मार्ग पर गुजरात चल पड़ा। शांति, एकता, भाईचारा यही रास्ता सही है और विकास के मार्ग पर ही कंधे से कंधा मिलाकर के हमें चलना है। विकास ही हमारी समस्याओं का समाधान है।

पिछले दिनों मुझे सूफ़ी परम्परा के विद्वानों से मिलने का अवसर मिला।

उनकी बातें सुनने का अवसर मिला। और मैं सच बताता हूं कि जिस तजुर्बे से, जिस प्रकार से, उनकी बातें मुझे सुनने का अवसर मिला एक प्रकार से जैसे कोई संगीत बज रहा है। उनके शब्दों का चयन, उनका बातचीत का तरीका, यानि सूफ़ी परम्परा में जो उदारता है, जो सौम्यता है, जिसमें एक संगीत का लय है, उन सबकी अनुभूति इन विद्वानों के बीच में मुझे हुई। मुझे बहुत अच्छा लगा। शायद दुनिया को इस्लाम के सही स्वरुप को सही रूप में पहुंचाना सबसे अधिक आवश्यक हो गया है। मुझे विश्वास है कि सूफ़ी परम्परा जो प्रेम से जुड़ा हुआ है, उदारता से जुड़ा हुआ है, वे इस संदेश को दूर-दूर तक पहुंचायेंगे, जो मानव-जाति को लाभ करेगा, इस्लाम का भी लाभ करेगा और मैं औरों को भी कहता हूं कि हम किसी भी संप्रदाय को क्यों न मानते हों, लेकिन, कभी सूफ़ी परम्परा को समझना चाहिये।

आने वाले दिनों में मुझे एक और अवसर मिलने वाला है, और इस निमंत्रण को मैं अपना सौभाग्य मानता हूं। भारत में, विश्व के कई देशों के बौद्ध परंपरा के विद्वान बोधगया में आने वाले हैं, और मानवजाति से जुड़े हुए वैश्विक विषयों पर चर्चा करने वाले हैं, मुझे भी उसमें निमंत्रण मिला है, और मेरे लिए खुशी की बात है कि उन लोगों ने मुझे बोधगया आने का निमंत्रण दिया है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरु बोधगया गए थे। मुझे विश्व भर के इन विद्वानों के साथ, बोधगया जाने का अवसर मिलने वाला है, मेरे लिए एक बहुत ही आनंद का पल है।

आने वाले दिनों में मुझे एक और अवसर मिलने वाला है, और इस निमंत्रण को मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। भारत में, विश्व के कई देशों के बौद्ध परंपरा के विद्वान बोधगया में आने वाले हैं, और मानवजाति से जुड़े हुए वैश्विक विषयों पर चर्चा करने वाले हैं, मुझे भी उसमें निमंत्रण मिला है, और मेरे लिए खुशी की बात है कि उन लोगों ने मुझे बोधगया आने का निमंत्रण दिया है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरु बोधगया गए थे। मुझे विश्व भर के इन विद्वानों के साथ, बोधगया जाने का अवसर मिलने वाला है, मेरे लिए एक बहुत ही आनंद का पल है।

मेरे प्यारे किसान भाइयो-बहनों, मैं फिर एक बार आप को विशेष रूप से आज मन की बात बताना चाहता हूं। मैं पहले भी 'मन की बात' में, इस विषय का जिक्र कर चुका हूं। आप ने सुना होगा, संसद में मुझे सुना होगा, सार्वजनिक सभाओं मे सुना होगा, 'मन की बात' में सुना होगा। मैं हर बार एक बात कहता आया हूं, कि जिस 'Land Acquisition Act' के सम्बन्ध में विवाद चल रहा है, उसके विषय में सरकार का मन खुला है। किसानों के हित के किसी भी सुझाव को मैं स्वीकार करने के लिए तैयार हूं, ये बार-बार मैं कहता रहा हूं। लेकिन आज मुझे, मेरे किसान भाइयों-बहनों को ये कहना है कि 'Land Acquisition Act'' में सुधार की बात राज्यों की तरफ से आई, आग्रहपूर्वक आई और सब को लगता था, कि गांव, ग़रीब किसान का अगर भला करना है, खेतों तक पानी पहुंचाने के लिए नहरें बनानी हैं, गांव में बिजली पहुंचाने के लिए खम्बे लगाने हैं, गांव के लिए सड़क बनानी है, गांव के ग़रीबों के लिए घर बनाने हैं, गांव के ग़रीब नौजवानों को रोज़गार के लिए व्यवस्थायें उपलब्ध करानी हैं, तो हमें ये अफ़सरशाही के चंगुल से, कानून को निकालना पड़ेगा और तब जाकर के सुधार का प्रस्ताव आया था। लेकिन मैंने देखा कि इतने भ्रम फैलाए गए, किसान को इतना भयभीत कर दिया गया। मेरे किसान भाइयो-बहनो, मेरा किसान न भ्रमित होना चाहिये, और भयभीत तो कतई ही नहीं होना चाहिए, और मैं ऐसा कोई अवसर किसी को देना नहीं चाहता हूं, जो किसानों को भयभीत करे, किसानों को भ्रमित करे, और मेरे लिए देश में, हर एक आवाज़ का महत्व है, लेकिन किसानों की आवाज़ का विशेष महत्व है। हमने एक Ordinance जारी किया था, कल 31 अगस्त को Ordinance की सीमा समाप्त हो रही है, और मैंने तय किया है, समाप्त होने दिया जाए। मतलब ये हुआ, कि मेरी सरकार बनी, उसके पहले जो स्थिति थी, वो अब पुनः प्रस्थापित हो चुकी है। लेकिन उसमें एक काम अधूरा था, और वो था - 13 ऐसे बिंदु थे, जिसको एक साल में पूर्ण करना था और इसलिए हम Ordinance में उसको लाये थे, लेकिन इन विवादों के रहते वो मामला भी उलझ गया। Ordinance तो समाप्त हो रहा है, लेकिन जिससे किसानों को सीधा लाभ मिलने वाला है, किसानों का सीधा आर्थिक लाभ जिससे जुड़ा हुआ है, उन 13 बिंदुओं को, हम नियमों के तहत लाकर के, आज ही लागू कर रहे हैं ताकि किसानों को नुकसान न हो, आर्थिक हानि न हो, और इसलिए जिन 13 बिन्दुओं को लागू करना पहले के कानून में बाकी था, उसको आज हम पूरा

कर रहे हैं, और मेरे किसान भाइयों और बहनों को मैं विश्वास दिलाता हूँ, कि हमारे लिए 'जय-जवान, जय-किसान' ये नारा नहीं है, ये हमारा मंत्र है - गांव, ग़रीब किसान का कल्याण - और तभी तो हमने 15 अगस्त को कहा था, कि सिर्फ कृषि विभाग नहीं, लेकिन कृषि एवं किसान कल्याण विभाग बनाया जायेगा, जिसका निर्णय हमने बहुत तेज़ी से आगे बढ़ाया है। तो मेरे किसान भाइयो-बहनो, अब न भ्रम का कोई कारण है, और न ही कोई भयभीत करने का प्रयास करे, तो आपको भयभीत होने की आवश्यकता है।

मुझे एक बात और भी कहनी है कि दो दिन पूर्व 1965 के युद्ध के पचास साल हुए और जब-जब 1965 के युद्ध की बात आती है तो लाल बहादुर शास्त्री जी की याद आना बहुत स्वाभाविक है। "जय-जवान, जय-किसान" मंत्र भी याद आना बहुत स्वाभाविक है। और भारत के तिरंगे झंडे को, उसकी आन-बान-शान बनाये रखने वाले, उन सभी शहीदों का स्मरण होना बहुत स्वाभाविक है। 65 के युद्ध के विजय के सभी संबंधितों को मैं प्रणाम करता हूं। वीरों को नमन करता हूं। और ऐसी इतिहास की घटनाओं से हमें निरंतर प्रेरणा मिलती रहे।

जिस प्रकार से पिछले सप्ताह मुझे सूफ़ी परम्परा के लोगों से मिलने का अवसर मिला उसी प्रकार से एक बड़ा सुखद अनुभव रहा। मुझे देश के गणमान्य वैज्ञानिकों के साथ घंटों तक बातें करने का अवसर मिला। उनको सुनने का अवसर मिला, और मुझे प्रसन्नता हुई कि साइंस के क्षेत्र में, भारत कई दिशाओं में, बहुत ही उत्तम प्रकार के काम कर रहा है। हमारे वैज्ञानिक, सचमुच में उत्तम प्रकार का काम कर रहे हैं। अब हमारे सामने अवसर है कि इन संशोधनों को जन-सामान्य तक कैसे पहुंचायें? सिद्धांतों को उपकरणों में कैसे तब्दील करें? Lab को Land के साथ कैसे जोड़ें? एक अवसर के रूप में उसको आगे बढ़ाना है। कई नई जानकारियां भी मुझे मिलीं। मैं कह सकता हूं कि मेरे लिए वो एक बहुत ही inspiring भी था, educative भी था। और मैंने देखा, कई नौजवान वैज्ञानिक क्या उमंग से बातें बता रहे थे, कैसे सपने उनकी आंखों में दिखाई दे रहे थे। और जब मैंने पिछली बार 'मन की बात' में कहा था कि हमारे विद्यार्थियों को विज्ञान की ओर आगे बढ़ना चाहिये। इस मीटिंग के बाद मुझे लगता है कि बहुत अवसर हैं, बहुत संभावनाएं हैं। मैं फिर से एक बार उसको दोहराना चाहूंगा। सभी नौजवान मित्र साइंस की तरफ़ रूचि लें, हमारे Educational Institutions भी विद्यार्थियों को प्रेरित करें।

मुझे नागरिकों से कई चिट्ठियां आती रहती हैं। ठाणे से, श्रीमान परिमल शाह ने 'MyGov.in' पर मुझे Educational Reforms के संबंध में लिखा है। Skill Development के लिए लिखा है। तमिलनाडु के चिदंबरम से श्रीमान् प्रकाश त्रिपाठी ने प्राइमरी शिक्षा के लिए अच्छे शिक्षकों की ज़रूरत पर बल दिया है। शिक्षा क्षेत्र में सुधारों पर बल दिया है।

मुझे ख़ास मेरे नौजवान मित्रों को भी एक बात कहनी है कि मैंने 15 अगस्त को लालकिले पर से कहा था, कि निचले स्तर के नौकरी के लिए ये interview क्यों? और फ़िर जब interview का कॉल आता है तो हर गरीब परिवार, विधवा माँ, सिफारिश कहां से मिलेगी, किसकी मदद से नौकरी मिलेगी, जैक किसका लगायेंगे? पता नहीं कैसे-कैसे शब्द प्रयोग हो रहे हैं? सब लोग दौड़ते हैं, और शायद नीचे के स्तर पर भ्रष्टाचार का ये भी एक कारण है। और मैंने 15 अगस्त को कहा था कि मैं चाहता हूं कि interview की परम्परा से एक स्तर से नीचे तो मुक्ति होनी चाहिये। मुझे खुशी है कि इतने कम समय में, अभी 15 दिन हुए हैं, लेकिन सरकार, बहुत ही तेज़ी से आगे बढ़ रही है। सूचनायें भेजी जा रही हैं, और क़रीब-क़रीब अब निर्णय अमल भी हो जायेगा कि interview के चक्कर से छोटी-छोटी नौकरियां छूट जायेंगी। ग़रीब को सिफ़ारिश के लिए दौड़ना नहीं पड़ेगा। exploitation नहीं होगा, corruption नहीं होगा।

इन दिनों भारत में विश्व के कई देशों के मेहमान आये हैं। स्वास्थ्य के लिए, ख़ासकर के माता-मृत्युदर और शिशु-मृत्युदर कम हो, उसकी कार्य योजना के लिए 'Call to Action' दुनिया के 24 देश मिलकर के भारत की भूमि में चिंतन किया। अमेरिका के बाहर ये पहली बार, किसी और देश में ये कार्यक्रम हुआ। और ये बात सही है कि आज भी हमारे देश में हर वर्ष क़रीब-क़रीब 50 हज़ार मातायें और 13 लाख बच्चे, प्रसूति के समय ही और उसके तत्काल बाद ही उनकी मृत्यु हो जाती है। ये चिन्ताजनक है और डरावना है। वैसे सुधार काफ़ी हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की सराहना भी होने लगी है, फ़िर भी ये आंकड़ा कम नहीं है। जैसे हम लोगों ने पोलियो से मुक्ति पाई, वैसे ही, माताओं और शिशु के मृत्यु में टिटनेस, उससे भी मुक्ति पाई। विश्व ने इसको स्वीकारा है। लेकिन हमें अभी भी हमारी माताओं को बचाना है, हमारे नवजात बच्चों को बचाना है।

भाइयो-बहनो, आजकल डेंगू की खबर आती रहती है। ये बात सही है कि डेंगू खतरनाक है, लेकिन उसका बचाव बहुत आसान है। और जो मैं स्वच्छ भारत की बात कर रहा हूं न, उससे वो सीधा-सीधा जुड़ा हुआ है। TV पर हम advertisement देखते हैं, लेकिन हमारा ध्यान नहीं जाता है। अखबार में advertisement छपती है, लेकिन हमारा ध्यान नहीं जाता है। घर में छोटी-छोटी चीज़ों में सफाई शुद्ध पानी से भी रख-रखाव करने के तरीके हैं। इन बातों में व्यापक लोक-शिक्षा हो रही है, लेकिन हमारा ध्यान नहीं जाता है और कभी-कभी लगता है कि हम तो बहुत ही अच्छे घर में रहते हैं, बहुत ही बढ़िया व्यवस्था वाले हैं और पता नहीं होता है

कि हमारे ही कहीं पानी भरा हुआ है और कहीं हम डेंगू को निमंत्रण दे देते हैं। मैं आप सब से यही आग्रह करूंगा कि मौत को हमने इतना सस्ता नहीं बनने देना चाहिए। ज़िंदगी बहुत मूल्यवान है। पानी की बेध्यानी, स्वच्छता पर उदासीनता, ये मृत्यु का कारण बन जाएं, ये तो ठीक नहीं है! पूरे देश में करीब 514 केन्द्रों पर डेंगू के लिए मुफ्त में जांच की सुविधायें उपलब्ध हैं। समय से रहते ही, जांच करवाना ही जीवन रक्षा के लिए उपयोगी है और इसमें आप सबका साथ-सहयोग बहुत आवश्यक है। और स्वच्छता को तो बहुत महत्व देना चाहिए। इन दिनों तो रक्षा-बंधन से दीवाली तक एक प्रकार से हमारे देश में उत्सव ही उत्सव होते हैं। हमारे हर उत्सव को स्वच्छता के साथ अब क्यों न जोड़ें? आप देखिये संस्कार स्वभाव बन जाएंगे।

मेरे प्यारे देशवासियो, आज मुझे एक खुशखबरी सुनानी है आपको, मैं हमेशा कहता हूं कि अब हमें देश के लिए मरने का सौभाग्य नहीं मिलेगा, लेकिन देश के लिए जीने का तो सौभाग्य मिला ही है। हमारे देश के दो नौजवान और दोनों भाई और वे भी मूल हमारे महाराष्ट्र के नासिक के - डॉ. हितेंद्र महाजन, डॉ. महेंद्र महाजन, लेकिन इनके दिल में भारत के आदिवासियों की सेवा करने का भाव प्रबल रहता है। इन दोनों भाइयों ने भारत का गौरव बढ़ाया है। अमेरिका में 'Race across America' एक Cycle-Race होती है, बड़ी कठिन होती है, करीब चार हजार आठ सौ किलोमीटर लम्बी रेस होती है। इस वर्ष इन दोनों भाइयों ने इस रेस में विजय प्राप्त किया। भारत का सम्मान बढ़ाया। मैं इन दोनों भाइयों को बहुत-बहुत शुभकामनायें देता हूं, बहुत-बहुत बधाई देता हूं, अभिनंदन करता हूं। लेकिन सबसे ज्यादा मुझे इस बात की खुशी हुई कि उनका ये सारा अभियान 'Team India – Vision for Tribal' आदिवासियों के लिए कुछ कर गुज़रने के इरादे से वो करते हैं देखिये, देश को आगे बढ़ाने के लिए हर कोई कैसे अपने-अपने प्रयास कर रहा है। और यही तो हैं, जब ऐसी घटनाएं सुनते हैं तो सीना तन जाता है।

कभी-कभार perception के कारण हम हमारे युवकों के साथ घोर अन्याय कर देते हैं। और पुरानी पीढ़ी को हमेशा लगता है, नई पीढ़ी को कुछ समझ नहीं है और मैं समझता हूं ये सिलसिला तो सदियों से चला आया है। मेरा युवकों के संबंध में अनुभव अलग है। कभी-कभी तो युवकों से बातें करते हैं तो हमें भी बहुत कुछ सीखने को मिलता है। मैं कई ऐसे युवकों को मिला हूं जो कहते हैं कि भई, मैंने तो जीवन में व्रत लिया हुआ है 'Sunday on Cycle'। कुछ लोग कहते हैं कि मैंने तो सप्ताह में एक दिन Cycle-Day रखा हुआ है। मेरी health के लिए भी अच्छा रहता है। environment के लिए भी अच्छा रहता है। और मुझे अपने युवा होने का बड़ा आनंद भी आता है। आजकल तो हमारे देश में भी साइकिल कई शहरों में चलती है और साइकिल को promote करने वाले लोग भी बहुत हैं। लेकिन ये पर्यावरण की रक्षा के लिए और स्वास्थ्य के सुधार के लिए अच्छे प्रयास हैं। और आज जब मेरे देश के दो नौजवानों ने अमेरिका में झंडा फहरा दिया, तो भारत के युवक भी जिस दिशा में जो सोचते हैं, उसका उल्लेख करना मुझे अच्छा लगा।

बाबासाहेब अम्बेडकर - मुंबई की 'इंदू मिल' की ज़मीन - उनका स्मारक बनाने के लिए लम्बे अरसे से मामला लटका पड़ा था। महाराष्ट्र की नई सरकार ने इस काम को पूरा किया और अब वहां बाबासाहेब अम्बेडकर का भव्य-दिव्य प्रेरक स्मारक बनेगा, जो हमें दलित, पीड़ित, शोषित, वंचित के लिए कार्य करने की प्रेरणा देता रहेगा।

मैं आज विशेष रूप से महाराष्ट्र सरकार को बधाई देना चाहता हूं। मुझे आनंद होता है। बाबासाहेब अम्बेडकर - मुंबई की 'इंदू मिल' की ज़मीन - उनका स्मारक बनाने के लिए लम्बे अरसे से मामला लटका पड़ा था। महाराष्ट्र की नई सरकार ने इस काम को पूरा किया और अब वहां बाबासाहेब अम्बेडकर का भव्य-दिव्य प्रेरक स्मारक बनेगा, जो हमें दलित, पीड़ित, शोषित, वंचित के लिए कार्य करने की प्रेरणा देता रहेगा। लेकिन साथ-साथ, लंदन में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जहां रहते थे - 10, किंग हेनरी रोड, वो मकान भी अब खरीद लिया है। विश्व भर में सफ़र करने वाले भारतीय जब लंदन जाएंगे तो बाबासाहेब अम्बेडकर जो स्मारक अब महाराष्ट्र सरकार वहां बनाने वाली है, वो एक हमारा प्रेरणा-स्थल बनेगा। मैं महाराष्ट्र सरकार को बाबासाहेब अम्बेडकर को सम्मानित करने के इन दोनों प्रयासों के लिए साधुवाद देता हूं, उनका गौरव करता हूं, उनका अभिनन्दन करता हूं।

मेरे प्यारे भाइयो-बहनो, अगली "मन की बात" आने से पूर्व आप अपने विचार जरुर मुझे बताइये, क्योंकि मेरा विश्वास है कि लोकतंत्र लोक-भागीदारी से चलता है। जन-भागीदारी से चलता है। कंधे से कन्धा मिला करके ही देश आगे बढ़ सकता है। **मेरी आपको बहुत-बहुत शुभकामनाएं। बहुत-बहुत धन्यवाद।**■

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के संबोधन का मूल पाठ

'बुद्ध के ज्ञान में दुनिया की समस्या का हल'

बिहार के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविन्द
मंगोलिया के आदरणीय खम्बा लामा डेम्बरेल
ताइवान के आदरणीय मिंग क्वांग शी
वियतनाम के आदरणीय थिक थिन टैम
रूस के आदरणीय तेलो तुल्कु रिन्पोचे
श्रीलंका के आदरणीय बनागला उपातिस्सा
आदरणीय लामा लोबज़ेंग
मेरी साथी मंत्रिगण, श्री किरेन रिजिजु
भूटान के मंत्री लियोनपो नाम्पे दोरजी
मंगोलिया के मंत्री ब्यारसैखान
महासंघ के आदरणीय सदस्यगण, विदेशों से आए मंत्री और राजनयिक,

आप सब के बीच आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। बोध गया आकर मैं अपने आपको धन्य महसूस कर रहा हूं। पंडित जवाहर लाल नेहरू और श्री अटल बिहारी वाजपेयी के बाद मुझे इस पवित्र स्थान पर आने का मौका मिला है।

मैं आप सब लोगों से एक अत्यंत विशेष दिन पर मिल रहा हूं। आज हम देश में हमारे दूसरे राष्ट्रपति महान् विद्वान और शिक्षक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की जयंती पर शिक्षक दिवस मना रहे हैं।

इस विचार गोष्ठी में हमने विश्व के इतिहास में सबसे प्रभावशाली शिक्षकों में से एक गौतम बुद्ध के बारे में बात की है। सदियों से करोड़ों लोग उनकी शिक्षा से प्रेरणा लेते हैं।

आज हम जन्माष्टमी भी मना रहे हैं, जो भगवान कृष्ण का जन्म दिवस है। विश्व को भगवान कृष्ण से बहुत कुछ सीखना चाहिए। जब हम भगवान कृष्ण के बारे में बात करते हैं तो हम कहते हैं श्री कृष्णम वंदे जगतगुरुम- श्री कृष्ण सभी गुरूओं के गुरू हैं।

गौतम बुद्ध और भगवान कृष्ण दोनों ने ही विश्व को बहुत कुछ सिखाया है। इस सम्मेलन का विषय एक प्रकार से इन दो महान व्यक्तित्वों के आदर्श और सिद्धांतों से प्रेरित है।

महाभारत का युद्ध शुरू होने से पहले श्रीकृष्ण ने अपना संदेश दिया और भगवान बुद्ध ने बार-बार युद्ध से ऊपर उठने पर जोर दिया। उन दोनों के द्वारा दिया गया संदेश धर्म संस्थापना के बारे में था।

दोनों ने सिद्धांतों और प्रक्रियाओं को अधिक महत्त्व दिया था। गौतम बुद्ध ने अष्टांग मार्ग और पंचशील दिए थे, जबकि श्रीकृष्ण ने कर्मयोग के रूप में जीवन का अमूल्य पाठ पढ़ाया। इन दो पवित्र आत्माओं में मतभेद से ऊपर उठकर लोगों को साथ में लाने की शक्ति थी। इस समय में उनकी शिक्षा व्यावहारिक और शास्वत सबसे अधिक उपयुक्त है।

जिस स्थान पर हम यह सम्मेलन कर रहे हैं, यह और विशेष हो गया है। हम बोध गया में सम्मेलन कर रहे हैं, जो मानवता के इतिहास में एक विशेष महत्व की भूमि है।

यह ज्ञानोदय की भूमि है। वर्षों पहले बोध गया को सिद्धार्थ मिला था, लेकिन बोध गया ने विश्व को भगवान बुद्ध दिया, जो ज्ञान, शांति और संवेदना के प्रतीक हैं।

इसीलिए जन्माष्टमी के पवित्र अवसर पर यह स्थान बातचीत और सम्मेलन के लिए आदर्श स्थान है और शिक्षक दिवस के अवसर पर ये स्थान अनूठा हो गया है।

परसों मुझे दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध परिसंघ के सहयोग से विवेकानंद अंतर्राष्ट्रीय फाउंडेशन और टोक्यो फाउंडेशन द्वारा आयोजित "संघर्ष परिहार एवं पर्यावरण चेतना" पर पहले अंतर्राष्ट्रीय

हिन्दू बौद्ध कदम के उद्घाटन समारोह में भाग लेने का मौका मिला था।

सम्मेलन का परिप्रेक्ष्य संघर्ष समाधान से बदलकर संघर्ष परिहार और पर्यावरण नियमन से हटाकर पर्यावरण जागरूकता के बारे में था।

मैंने अपने विचार दो गंभीर विषयों पर साझा किए, जो आज सबसे अधिक मानवता के लिए चुनौती बन गए हैं। मैंने स्मरण किया कि किस तरह से विश्व आज संघर्ष समाधान प्रक्रियाओं और पर्यावरण नियमन के रूप में बुद्ध की ओर देख रहा है।

आध्यात्मिक और धार्मिक नेताओं तथा अधिकतर बौद्ध समुदाय के विद्वानों ने दो दिवसीय सम्मेलन में इन दो मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त किए। दो दिवसीय सम्मेलन की समाप्ति पर टोक्यो फाउंडेशन ने घोषणा की कि उन्होंने इसी प्रकार का सम्मेलन जनवरी, 2016 में आयोजित करने का फैसला किया है और अन्य बौद्ध राष्ट्रों ने भी इसी तरह के सम्मेलन अपने देशों में आयोजित करने को भी कहा।

यह एक विलक्षण प्रगति ऐसे समय पर हुई है, जब आर्थिक और सामुदायिक रूप में एशिया का उदय हो रहा है।

दो दिवसीय सम्मेलन में इन दोनों मुद्दों पर मोटे तौर पर सहमति बनी। संघर्ष के मुद्दे पर जो अधिकतर धार्मिक असहिष्णुता के कारण होती है, पर सभी प्रतिभागी सहमत थे कि जब किसी के धर्म को अपनाने की स्वतंत्रता कोई समस्या नहीं है तो कट्टरपंथी अपने सिद्धांतों को दूसरों पर थोपने की कोशिश करते हैं और जिससे संघर्ष पैदा होता है। पर्यावरण पर सम्मेलन में सभी इस बात से सहमत थे कि धर्मप्राकृतिक विरासत की संरक्षा पर जोर देता है, जो सतत् विकास के लिए जोर देता है। यहां मैं यह भी कहना चाहता हूं कि संयुक्त राष्ट्र भी इस विचार से सहमत है कि स्थानीय लोगों की संस्कृति से जोड़कर सतत् विकास हासिल किया जा सकता है।

मेरे विचार में यह विश्व विविधता के विकास मॉडल में एक सकारात्मक पहलू है। मैं कहना चाहता हूं कि विश्व स्तर पर हिन्दू-बौद्ध समुदाय के लिए तैयार किया गया पारिस्थितिकी तंत्र विश्व के लिए अपने विचार आगे बढ़ाएगा।

बोध गया में बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई, जिससे हिन्दुत्व का भी ज्ञानोदय हुआ। मैं बौद्ध धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं की घोषणा को पढ़कर प्रसन्न हूं। ये घोषणाएं कठिन, कड़े परिश्रम और व्यापक बातचीत का परिणाम है और इसलिए यह एक पथप्रदर्शक आलेख है, जो हमें आगे का रास्ता दिखाएगा। एक बार फिर मेरी ओर से आप सभी को बधाई और शुभकामनाएं। इस सम्मेलन से आशा है कि संघर्ष को टालकर सामुदायिक सौहार्द और विश्व शांति के लिए बातचीत का खाका तैयार होगा।

भगवान बुद्ध की शिक्षा का सबसे अधिक लाभ हिन्दू दर्शन को मिला है। कई विद्वानों ने हिन्दुत्व पर बुद्ध के असर का विश्लेषण किया है। आमजन के लिए बुद्ध इतने श्रद्धेय थे कि जयदेव ने अपने गीत गोविंद में उनकी महाविष्णु के रूप में प्रशंसा की, जो अहिंसा का प्रचार करने के लिए भगवान के रूप में अवतरित हुए। इसलिए हिन्दुत्व बुद्ध के आगमन के बाद बौद्ध हिन्दुत्व और हिन्दू बौद्ध बन गए। आज वे एक-दूसरे में पूरी तरह घुलमिल गए हैं।

स्वामी विवेकानंद ने बुद्ध की इस प्रकार प्रशंसा की।

उनके शब्दों में:

जब बुद्ध का जन्म हुआ, उस समय भारत को एक महान आध्यात्मिक नेता, एक मोहम्मद की आवश्यकता थी।

बुद्ध न वेद, न जाति, न पंडित और न ही परम्परा कभी किसी के आगे नहीं झुके। उन्होंने निर्भय होकर कारण जाने। सच्चाई के लिए निर्भय खोज, विश्व में रहने वाले प्रत्येक जीवन के लिए इस तरह का प्रेम कभी नहीं देखा गया।

बुद्ध किसी भी शिक्षक से अधिक साहसी और अनुशासित थे। बुद्ध पहले मानव थे, जिन्होंने अपनी दुनिया को आदर्शवाद का एक पूरा तंत्र दिया। वे अच्छे के लिए अच्छे थे और उन्हें प्रेम के लिए प्रेम किया गया।

बुद्ध समानता के बड़े समर्थक थे।

बोध गया में बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई, जिससे हिन्दुत्व का भी ज्ञानोदय हुआ। मैं बौद्ध धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं की घोषणा को पढ़कर प्रसन्न हूं। ये घोषणाएं कठिन, कड़े परिश्रम और व्यापक बातचीत का परिणाम है और इसलिए यह एक पथप्रदर्शक आलेख है, जो हमें आगे का रास्ता दिखाएगा। एक बार फिर मेरी ओर से आप सभी को बधाई और शुभकामनाएं। इस सम्मेलन से आशा है कि संघर्ष को टालकर सामुदायिक सौहार्द और विश्व शांति के लिए बातचीत का खाका तैयार होगा।

आप सब का धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद। ■

बौद्ध-धम्म और अन्य धर्म

■ डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

शायद आगे बढ़ने से पूर्व 'धर्म' शब्द की उसके छोटे से अर्थ में जांच की जाए। परन्तु इस विशेष शब्द की समस्या है कि इसके विभिन्न अर्थ होते हैं और बिल्कुल कोई निश्चित अर्थ नहीं है। इस शब्द के संकेतार्थ समय के साथ बदलते गए। अपने प्रारंभिक चरण में कमोवेश धर्म शब्द की पहचान विश्वास, कर्म-काण्ड, समारोह प्रार्थनाएं, यज्ञ बलियां आदि बन गयी। धर्म में केन्द्र बिन्दु विश्वास के साथ प्रारंभ हुआ कि कोई शक्ति है जो सारी घटनाओं जैसे प्रकाश, वर्षा, बाढ़ आदि का कारण है, जिसे असभ्य मानव ही नहीं जानता था तथा समझ नहीं सका। कुछ समय बाद इस प्रस्तावित ईश्वर, संसार और मानव का प्रस्तावित निर्माता के रूप में पुकारा गया।

बाद में ईश्वर का यह विश्वास संसार और मानव के निर्माता के रूप में इसी तरह के दूसरे विश्वास को माना गया-आत्मा में विश्वास। यह माना गया कि प्रत्येक मानव की आत्मा होती है और यह आत्मा अपरिवर्तनीय शाश्वत तथा ईश्वर के प्रति उत्तरदायी इस संसार में मानव के कर्मों के प्रति होती है।

विभिन्न चरणों से गुजरने के बाद अब 'धर्म' शब्द के अर्थ में जुड़ गए-1. ईश्वर में विश्वास, 2. आत्मा में विश्वास, 3. प्रार्थनाओं, कर्मकाण्डों, यज्ञ-बलियों के द्वारा पूजा करके ईश्वर को मना लेना। हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म तथा इस्लाम इनके अतिरिक्त निम्नलिखित में भी विश्वास करते हैं :-

1. मान्य ग्रन्थों में विश्वास करना।
2. एक रक्षक में विश्वास करना।

हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम इन तीनों धर्मों में कुछ अथवा ज्यादा अन्तर है और निश्चय ही अन्तर है; परन्तु एक बाहरी आदमी जो इनमें से किसी भी धर्म का अनुयाई नहीं है, इन तीनों धर्मों को कमोबेश एक श्रेणी में मानता है।

> **बुद्धत्व एक उपलब्धि होती है। जिसे हर कोई पा सकता है। यदि हम बौद्ध-धम्म को पूरी तरह समझना चाहते हैं तो हमें चार आर्य-सत्यों (सार्वभौमिक सत्य) को याद रखना होगा जो चार की संख्या में होने पर भी अलग-अलग नहीं हैं। इन चारों को एक साथ माना जाता है।**

ऐसा नहीं है कि वे सब किसी निर्माता को मानते हैं, जिनके निम्न नाम ईश्वर, गॉड अथवा अल्लाह। यह नहीं है कि वे सब मृत्यु के बाद जीवन को मानते हैं, एक स्थायी इकाई जिसे 'आत्मा' पुकारता है, दूसरा 'सोल' पुकारता है। और तीसरा इसे 'रूह' कहता है। यह नहीं है कि वे सब मान्य ग्रंथ में विश्वास करते हैं। एक हिन्दू के लिए उसका वेद है, एक ईसाई के लिए उसकी बाईबल, एक मुस्लिम के लिए उसकी कुरान। क्या ऐसा नहीं है कि वे सब एक रक्षक को मानते हैं? एक आम हिन्दू के लिए वह राम और कृष्ण है अथवा कोई अन्य अवतार, एक ईसाई के लिए ईसा मसीह खुद का बेटा, एक मुस्लिम के लिए हजरत मुहम्मद खुदा का पैगम्बर। प्रारंभ से ही बुद्ध के अनुयाई किसी मान्य ग्रंथ से बंधा नहीं है।

बिना मान्यता के ईश्वर कहीं नहीं टिकता और बिना ईश्वर के मान्यता नहीं टिकती। बौद्ध-धम्म में इन दोनों के लिए कोई स्थान नहीं है। किसी तथाकथित मान्यता के बजाय बौद्ध-धम्म में गौतम बुद्ध की शिक्षाओं को महत्त्व दिया गया है।

उनकी शिक्षाएं पालि-ग्रंथ त्रिपिटक में संकलित हैं, जिसके अतिरिक्त संस्कृत बौद्ध साहित्य भी है, जिन्हें बाद में चीनी, तिब्बती भाषा में अनूदित किया गया।

विशेषत: थेरवादी बौद्ध-धम्म में किसी ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है अथवा उसके पैगम्बर या उसके अवतार में। गौतम बुद्ध न तो पैगम्बर थे और न ही अवतार। वे पैदा हुए और बड़े मानव जैसे और अपने स्वयं के प्रयासों से बुद्धत्व प्राप्ति करके बुद्ध बने। बुद्ध का व्यक्तिगत नाम सिद्धार्थ था। बुद्धत्व एक उपलब्धि होती है। जिसे हर कोई पा सकता है। यदि हम बौद्ध-धम्म को पूरी तरह समझना चाहते हैं तो हमें चार आर्य-सत्यों (सार्वभौमिक सत्य) को याद रखना होगा जो चार की संख्या में होने पर भी अलग-अलग नहीं हैं। इन चारों को एक साथ माना जाता है। जिन्हें इस प्रकार कहा जा सकता है:- **''संसार में दुख है और उससे मुक्त होने का एक मार्ग है।''**

इस सच्चाई से आगे बुद्ध ने ईश्वर

के अस्तित्व की शिक्षा नहीं दी, ना ही आत्मा के अस्तित्व की। उन्होंने ईश्वर और आत्मा के मिलने की आवश्यकता की शिक्षा नहीं दी। तब कौन सा मार्ग है, सारे दुखों की शिक्षाओं का सार क्या है? इस प्रश्न का अन्त आष्टांगिक मार्ग, आठ अंगों वाला मार्ग है–

1. **सम्मा-दिट्ठी (सम्यक् दृष्टि)** चीजों को उसी रूप में देखना, जिस रूप में वास्तव में वे होती है, मात्र विश्वासों से विचलित नहीं होना।
2. **सम्मा-संकपा (सम्यक्-संकल्प)** ऊंचे आदर्श और सुन्दर आकांक्षाएं रखना।
3. **सम्मा-वाचा (सम्यक्-वाणी)** झूठ, कटु और मिथ्या भाषण से बचना तथा सत्यवादी होना, मधुर भाषा का प्रयोग करना, समय के अनुकूल उदार वचन बोलना।
4. **सम्मा-कम्मन्तो (सम्यक्-कर्मान्त)** भले कार्यों को करना और बुरे कर्मों से बचना।
5. **सम्मा-आजीवो (सम्यक् - आजीविका)** जीविका का सम्यक् साधन अपनाना। दासों, मादक-द्रव्यों का व्यापार एक बौद्ध के लिए निषिद्ध है।
6. **सम्मा-व्यायामो (सम्यक्-व्यायाम)** अपने चरित्र की सभी बुराईयों को दूर करने के लिए सम्यक् प्रयास करना तथा अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को सुरक्षित (संजोय) रखना।
7. **सम्मा-सत्ती (सम्यक्-स्मति)** सदा जागरूक रहना और कभी भी छोटी-छोटी बातों तक में असावधान नहीं रहना।
8. **सम्मा-समाधि (सम्यक्-समाधि)** शांतिपूर्ण एवं गंभीर विचारों का उत्पन्न करना, जो पूर्ण रूप से विकसित हों और प्रज्ञा की ओर अग्रसर हो। बौद्ध-धम्म निराशावादी नहीं है। निराशावादी मानते हैं कि संसार में दुख है और उससे विमुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। परन्तु बुद्ध कहते हैं, 'संसार में दुख है और इससे मुक्ति का मार्ग है। केवल प्रारंभ में बौद्ध-धम्म ने दुख पर बल दिया है अन्त में नहीं। अंतिम लक्ष्य निब्बाण (निर्वाण), परम आनन्द पूर्ण स्वभाव (प्रकृति) है।

नैतिकता कमोवेश आष्टांगिक मार्ग के समान है, जिसका अन्य धर्मों ने प्रचार किया है। इस सन्दर्भ में सारे धर्म बौद्ध-धम्म के साथ एक हैं। तथापि अन्य धर्मों की अपेक्षा अधिक सीमा तक। बौद्ध-धम्म ने नैतिकता पर बल दिया। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने कहा है– ''अन्य धर्मों में नैतिकता एक रेलगाड़ी के डिब्बे के समान है, जिसे इच्छानुसार जोड़ा अथवा हटाया जा सकता है। बुद्ध के संबंध में धम्म में नैतिकता बहुत बड़ा आधार होता है।

आज के समय में अधिकतर लोग धर्म को व्यक्तिगत मामला कहते हैं। किसी के सार्वजनिक जीवन में इसकी कोई भूमिका नहीं होती। बौद्ध-धम्म ऐसे विचार को नहीं स्वीकार कर सकता। मौलिक रूप में बुद्ध का धम्म परहितवादी है, जैसा बुद्ध ने कहा है- ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'। बौद्ध-धम्म जीवन के सभी क्षेत्रों में मानव-मानव के बीच सम्यक् संबंध स्थापित करने की शिक्षा देता है। धम्म एक सामाजिक आवश्यकता है, संस्कृत (सभ्य) समाज की सामाजिक जिम्मेदारी को नकारता नहीं है।

जब तथागत बुद्ध गांव-गांव, कस्बों और नगरों की चारिका कर रहे थे, एक गंभीर आरोप ब्राह्मणों ने उन पर लगाया और प्रचार किया कि सभी चारों वर्ण या जातियां समान रूप से पवित्र हैं अथवा उनमें समान रूप से पवित्र बनने की क्षमता होती है। इस प्रकार ब्राह्मणों ने असमानता को स्वीकारा जबकि तथागत ने सम्पूर्ण समानता का प्रचार किया।

चातुर्वर्ण्य, हिन्दू समाज चतुर्वर्ण्यी विभाजन मात्र, क्रमिक असमानता पर आधारित है। क्रमिक असमानता का अर्थ होता है कि वे जो हिन्दू समाज से सम्बद्ध हैं, समान रूप में असमान तक नहीं होते। अपने बीच में एक ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, एक क्षत्रिय ब्राह्मण से नीचे, परन्तु एक वैश्य से ऊपर एवं शूद्र को सदा इस सामाजिक सीढ़ी के सबसे निचले स्तर पर रखा गया।

इस चातुर्वर्ण्यी विभाजन का एक दुखद पक्ष है शूद्र को पूर्ण रूप से शिक्षा से वंचित रखना। एक ब्राह्मण संभावित उच्चतम शिक्षा ग्रहण करे, एक क्षत्रिय को मुख्य रूप से सैन्य शिक्षा दी जाए, एक वैश्य को मुख्यत: उसके व्यापार की शिक्षा मिले, जहां तक शूद्र का प्रश्न है, ये किसी प्रकार की कोई भी शिक्षा प्राप्त न कर सकें।

न तो एक क्षत्रिय, न ही एक वैश्य धर्म-प्रचारक अथवा धार्मिक पुरोहित धार्मिक क्रिया-कलापों को सम्मान करने हेतु बनने की इच्छा न करे, ये कार्य सब मिलकर ब्राह्मणों के द्वारा सम्पादित किए जाएं।

न केवल शूद्र को शिक्षा की मनाही थी, अपितु उनकी जाति का ध्यान रखे बिना सारी महिलाओं को भी शिक्षा से वंचित रखा गया। अत: भारत का बहुजन को हिन्दुओं के चातुर्वर्ण्य के विचार के द्वारा शिक्षा से वंचित रखा गया।

हिन्दू समाज के इस चातुर्वर्ण्यी आदर्श का अत्यन्त दुखद पक्ष था और है कि यह स्थायी विभाजन है, एक जन्म से मृत्यु तक का विभाजन। एक बार का ब्राह्मण सदा के लिए ब्राह्मण, एक बार एक शूद्र सदा के लिए शूद्र, कोई विशेष योग्यता का कार्य तक उसे इसके विपरीत नहीं बना सकता।

अत: वर्तमान युग में इस दुखद हिन्दू समाज की चातुर्वर्ण्यी व्यवस्था के विरुद्ध दृढ़ प्रतिक्रिया है।

आधुनिक शिक्षा, संचार के साधन, विभिन्न प्रकार के व्यवसाय, सब इस ढांचे के अनेक तरीकों से छोटा मानते हैं। तथागत बुद्ध की शिक्षा भारत के इस संकटकालीन मोड़ पर भारतीय समाज के लिए महान सेवा हो सकती है। ■

क्या 'बौद्ध-धम्म' धर्म है?

■ नारद महाथेरा

आमतौर पर जिस आशय में संसार में धर्म को समझा जाता है, बौद्ध-धम्म इस आशय में धर्म नहीं है, क्योंकि यह कोई विश्वास एवं पूजा की ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जिसमें किसी परा-प्रकृति के प्रति आस्था हो।

बौद्ध-धम्म में अनुयाईयों के लिए किसी अंधविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं है। इसमें मात्र मान्यता को उखाड़ कर उसके स्थान पर ज्ञान (जानकारी) पर आधारित विश्वास को स्थापित किया गया है, जिसे पालि-वाङ्मय में 'सद्धा' (श्रद्धा) कहा गया है। किसी बौद्ध का बुद्ध के प्रति विश्वास किसी बीमार व्यक्ति का चिकित्सक के प्रति विश्वास अथवा एक विद्यार्थी का अपने शिक्षक के प्रति विश्वास अथवा एक विद्यार्थी का अपने शिक्षक प्रति विश्वास की भांति है। एक बौद्ध बुद्ध की शरण ग्रहण करता है, क्योंकि ये बुद्ध ही हैं जिन्होंने मुक्ति-पथ की खोज की।

एक बौद्ध बुद्ध की शरण इस आशा से ग्रहण नहीं करता कि बुद्ध की व्यक्तिगत शुचिता से उसकी रक्षा होगी। बुद्ध ने ऐसी कोई गारण्टी नहीं दी है। किसी की अशुचिता अथवा पापों को धो डालना बुद्ध की शक्ति में निहित नहीं हैं। कोई किसी को न तो पवित्र कर सकता है और न ही पापी बना सकता है।

एक शिक्षक के नाते बुद्ध हमें अनुदेश देते हैं, किन्तु हम स्वयं ही अपनी पवित्रता के लिए उत्तरदायी है।

यद्यपि एक बौद्ध धर्मावलम्बि बुद्ध की शरण ग्रहण करता है वह कोई स्व-समर्पण नहीं करता है, न ही एक बौद्ध बुद्ध का अनुयाई बन कर अपने

विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का त्याग करता है। वह स्वयं अपनी स्वतंत्र इच्छा का अभ्यास कर सकता है और अपनी प्रज्ञा को स्वयं 'बुद्ध' बनने तक विकसित कर सकता है।

बौद्ध-धर्म का प्रारंभिक बिन्दु कारण अथवा समझ (सोच) है, जिसे पालि भाषा में सम्मादिट्ठी (सम्यक्-दृष्टि) कहा जाता है। सत्य के अन्वेषी को बुद्ध कहते हैं, 'किसी बात को इसलिए मत मानो कि मात्र ऐसा कहा गया है अर्थात् यह सोचना कि ऐसा लम्बे समय से सुना जाता है। किसी बात को मात्र परम्परागत होने के कारण भी मत मानो अर्थात् यह सोचना कि कई पीढ़ियों से ऐसी परम्परा चली आई है। किसी बात को मात्र कल्पना के आधार पर मत मानो। किसी बात को मात्र तर्कसंगत होने के कारण भी मत मानो। किसी बात को मात्र उसके कारणों पर ध्यान रखकर मत मानो। किसी बात को मात्र इसलिए मत मानो कि यह आपके विचार से मेल खाती है। किसी बात को मात्र इसीलिए मत मानो कि यह मान्य लगती है अर्थात् ऐसा सोचना कि कहने वाला सज्जन पुरुष प्रतीत होता है और उसकी बातों को मानना चाहिए। किसी बात को मात्र इसलिए मत मानो कि ऐसा साधु-सन्तों द्वारा कहा गया है, इसीलिए उनकी बात को माननी ठीक है।

''जब आप स्वयं के लिए जानो कि ये चीजें अनैतिक हैं, ये बातें आरोपित करवाने वाली हैं, ये बातें विद्वानों द्वारा निन्दित हैं, इन चीजों को जब अपनाया जाए तो ये विनाश और दुख का कारण प्रतीत हों, तब वास्तव में आप उन्हें छोड़ देंगे।''

''जब आप स्वयं के लिए जानो कि ये बातें नैतिक हैं, ये बातें आरोपित नहीं करवातीं, इस बातों की बुद्धिमानों ने प्रशंसा की है और इन बातों को अपनाने से हित एवं सुख में वृद्धि होगी तब आप उन पर आचरण करके जीवन जीओ।''

बुद्ध के इन प्रेरणाप्रद शब्दों में आज भी उनकी मूल-शक्ति और ताजापन विद्यमान है। यद्यपि बौद्ध-धम्म में कोई अंधविश्वास नहीं है, कोई कह सकता है कि क्या उसमें मूर्तियों आदि की पूजा नहीं होती।

बौद्धों में किसी सांसारिक अथवा आध्यात्मिक इच्छा की पूर्ति हेतु मूर्ति-पूजा नहीं होती, अपितु वह जिसका प्रतिनिधित्व करती है, उसके प्रति नमस्कार किया जाता है। प्रतिमा पर पुष्प और सुगंध भेंट करना बौद्धों की एक मान्यता है कि वह स्वयं यह महसूस करे यह जीवित बुद्ध के समक्ष है जिससे वह प्रेरणा लेता है, उनके अनुपम व्यक्तित्व से और उनकी असीम करुणा का गहरा श्वास लेता है। वह बुद्ध के उत्तम उदाहरण का अनुसरण करने का प्रयास करता है।

बोधिवृक्ष भी बुद्धत्व का एक प्रतीक है। पूजा हेतु बाह्य वस्तुएं नितान्त रूप से आवश्यक नहीं है बल्कि किसी का ध्यान केन्द्रित करने हेतु लाभदायक होती हैं। एक बुद्धिमान व्यक्ति आसानी से अपना ध्यान केन्द्रित करके बुद्ध के दर्शन कर सकता है।

कृतज्ञतावश एवं अपने भले के लिए हम ऐसा बाह्य सम्मान करते हैं किन्तु बुद्ध जो अपने शिष्य से अपेक्षा रखता है, इतने अभिवादन से अधिक उनकी शिक्षाओं के वास्तविक अनुसरण करना है। बुद्ध कहते हैं, ''वह मुझे उत्तम रूप में सम्मान देता है, जो मेरी शिक्षाओं का उत्तम रूप से अनुसरण करता है, वह जो धम्म को देखता है, मुझे देखता है।''

इतना होने पर भी प्रतिमाओं के संबंध में काउण्ट केसरलिंग का कथन है- ''मैं इस संसार में बुद्ध की प्रतिमा के अतिरिक्त कुछ भी श्रेष्ठ नहीं देखता हूं। इस दृश्यमान कार्य क्षेत्र में यह एक आध्यात्मिकता की सर्वथा सम्पूर्ण मूर्तिमत्ता है।

इससे अधिक उल्लेखनीय है कि बौद्ध-धम्म में कोई निवेदनीय अथवा मध्यस्थता हेतु प्रार्थनाएं नहीं की जाती है, तिस पर भी हम बुद्ध की जितनी प्रार्थना करें, हमें बचाया नहीं जा सकता। निवेदनीय प्रार्थनाओं के बजाय बौद्ध-धम्म में विपश्यना (ध्यान-भावना) है जिससे स्वयं को नियंत्रित, जागरूक एवं शुद्ध किया जाता है। विपश्यना न तो एक शान्त चिन्ता होती है और न ही मस्तिष्क के लिए एक पौष्टिक तत्व होती है। बुद्ध ने न केवल प्रार्थनाओं की निरर्थकता के लिए बोला है अपितु एक मानसिक-दासता की निरर्थकता के लिए बोला है अपितु एक मानसिक-दासता की उपेक्षा की है। एक बौद्ध को बचाव के लिए प्रार्थना नहीं करना चाहिए बल्कि स्वयं पर भरोसा और अपनी स्वतंत्रता पर विजय पानी चाहिए।

बौद्धों में किसी सांसारिक अथवा आध्यात्मिक इच्छा की पूर्ति हेतु मूर्ति-पूजा नहीं होती, अपितु वह जिसका प्रतिनिधित्व करती है, उसके प्रति नमस्कार किया जाता है। प्रतिमा पर पुष्प और सुगंध भेंट करना बौद्धों की एक मान्यता है कि वह स्वयं यह महसूस करे यह जीवित बुद्ध के समक्ष हैं जिससे यह प्रेरणा लेता है, उनके अनुपम व्यक्तित्व से और उनकी असीम करुणा का गहरा श्वास लेता है। वह बुद्ध के उत्तम उदाहरण का अनुसरण करने का प्रयास करता है।

''प्रार्थनाएं ईश्वर से स्वार्थ हेतु, सौदेबाजी हेतु निजी संचार का चरित्र ग्रहण करती है। इससे सांसारिक वस्तुओं की आकांक्षा एवं अहं की भावना जागृत होती है। इसके विपरीत विपश्यना स्व-परिवर्तन है।'' डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है- अधिकांश अन्य धर्मों की भांति बौद्ध-धम्म में कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर नहीं है, जिसकी आज्ञा का पालन किया जाए और उनसे भयभीत रहें। बुद्ध किसी जगत संबंधी (ऐहिक) अधिकारी, सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापक को नहीं मानते हैं। बौद्ध-धम्म में कोई दैविक संदेश अथवा दैविक सन्देशवाहक (पैगम्बर) नहीं है। इसीलिए एक बौद्ध किसी परा-प्रकृति के अधीन नहीं होता जो उसकी नियति को नियंत्रित करें और जो स्वेच्छाचारी रहकर पुरस्कार अथवा दण्ड देता हो। क्योंकि बौद्धों का किसी दैविक जीव के संदेश में विश्वास नहीं होता है, बौद्ध-धम्म सत्य के एकाधिकार का दावा नहीं करता है और किसी अन्य धर्म की निन्दा नहीं करता। परन्तु बौद्ध-धम्म मानव की अनन्त आन्तरिक सम्भावनाओं को मानता है और सिखाता है कि मानव दुख से मुक्ति अपने स्वतंत्र प्रयासों से प्राप्त कर सकता है बिना किसी दैविक सहायता अथवा पुरोहितों की मध्यस्थता के।

डॉ. राधा कृष्णन ने कहा है- ''बौद्ध-धम्म को वस्तुत: धर्म नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह न तो विश्वास और पूजा की प्रणाली है, न ही बाहरी कार्य अथवा स्वरूप, जिससे लोगों द्वारा ईश्वर अथवा देवताओं के अस्तित्व की मान्यता का संकेत होता है, जिसकी शक्ति पर उनकी नियति का आज्ञापालन सेवा और सम्मान देय हो।''

यदि धर्म का अर्थ माना जाता है एक शिक्षा जो जीवन का विचार लेता है वह दिखावे की अपेक्षा बहुत अधिक है, एक शिक्षा जो जीवन में झांकती है और मात्र इस पर नजर रखती है, एक शिक्षा जो लोगों को व्यवहार (आचरण) का मार्ग प्रदर्शन करती है, जो उनके अन्तर्भाव के अनुसार होता है, एक शिक्षा जो उसका अभ्यास करते हैं, उन्हें जीवन-संघर्ष हेतु धैर्यवान बनाती है अथवा एक व्यवस्था है जीवन की बुराईयों को दूर करने हेतु, तब निश्चय ही बौद्ध-धम्म धर्मों का धम्म है। ■

धर्म नहीं 'धम्म'

■ दयाशंकर एडवोकेट

संसार में अनेक धर्म फैले हुए हैं और करोड़ों की संख्या में उनके अनुयायी भी है। इन सभी धर्मों में कुछ बातें समान रूप से पाई जाती हैं, जैसे ईश्वर की सत्ता, आत्मा की सत्ता, स्वर्ग नर्क आदि। उनके अनुसार 'धर्म' क्या है? के उत्तर में ईश्वर में विश्वास, आत्मा में विश्वास, ईश्वर की पूजा, आत्मा का उद्धार, स्वर्ग की प्राप्ति तथा प्रार्थना करके अपने सांसारिक लाभ अथवा सुख की कामना किया जाना आदि है। चूंकि ये सभी बातें भगवान तथागत के बताये मार्ग में नहीं है, इसलिये कुछ यूरोपीय देववादी 'धम्म' को धर्म की श्रेणी में ही नहीं गिनते। यदि उन लोगों का ऐसा मत है, तो मेरा प्रत्युत्तर है कि भगवान बुद्ध का मार्ग 'धम्म' है, केवल मात्र धर्म नहीं।

भगवान बुद्ध के मार्ग 'धम्म' एवं धम्म शब्द का एक विशेष अर्थ है। तथागत के मार्ग के लिये सम्बोधन हेतु 'धम्म' शब्द ही उपयुक्त है। यह एक टैक्नीकल नाम है। इसका कोई अन्य स्थानापन्न (Substitute) हो ही नहीं सकता। जिस प्रकार 'बौद्ध भिक्खु' संज्ञा के साथ ही मन में एक प्रकार का श्रद्धा भाव उत्पन्न होने के साथ-साथ वह ज्ञानी, पढ़ा-लिखा, सम्यक् विचार, सम्यक् दृष्टि वाला होगा, ऐसा एक रेखाचित्र सा बन जाता है। जबकि साधू या महात्मा शब्द के साथ कुछ श्रद्धा तो उत्पन्न हो जाएगी, किन्तु जैसा भाव भिक्खु के लिए उत्पन्न होता है, वैसा भाव आवश्यक तौर पर पैदा नहीं होता। उसी प्रकार 'धम्म' शब्द के साथ ही 'बौद्ध धम्म' के लिए एक विशेष प्रकार का आदरभाव मन में उत्पन्न होता है। वैसा 'धर्म' शब्द के

साथ नहीं होता। धम्म ईश्वरीय कृति नहीं है। इसका निर्माण किसी अज्ञात शक्ति ने नहीं किया। यह तो एक (Discovery) डिस्कवरी है, खोज, आविष्कार है गवेषणा है, अवगाहन है, जिसको भगवान तथागत ने अनुभव, मनन, ध्यान करके अपने उपदेशों के रूप में दिया। भेंट चढ़ाना, प्रार्थना करना, लाभ प्राप्ति हेतु मूर्तियों के समक्ष गिड़गिड़ाना, मांगना, स्वार्थ पूर्ति हेतु अर्पण जैसी क्रियाएं 'धम्म' में मान्य नहीं हैं। धम्म तो जीवन जीने का एक नैतिक तरीका है। ये सब तो धर्म में होती है, 'धम्म' में नहीं। धम्म में तो सदाचार पर जोर दिया जाता है। ऐसे कर्मो पर जोर दिया गया है, जिससे अधिकांश लोगों का भला हो, कल्याण हो। धम्म कहता है कि आचरण ऐसा होना चाहिये, व्यवहार ऐसा करना चाहिए, जिसमें अपना तथा अन्यों का अहित न हो। जिसमें अन्यों का तथा अपना हित हो, वही कार्य करना चाहिए। वही उचित है, जिसमें बहुजनों का हित बहुजनों का सुख निहित हो। धर्मों में ऐसा नहीं। वहां तो व्यक्ति विशेष को मोक्ष मिल जाए, व्यापार में लाभ हो जाए, उसकी लाटरी खुल जाए अथवा अन्य लाभ हो जाए, ऐसा कर्म ही उचित माना जाता है। जो कुछ भी व्यक्ति उसकी पूजा, उपासना में समाज (बहुजन) का तो जिक्र ही नहीं आता। धर्म में कोई कर्म अच्छा या बुरा इसलिए नहीं होता कि समाज हित व अहित होता है अथवा नर्क के भय पर निर्भर करता है। धर्म की आवश्यकता एक अकेले व्यक्ति के लिए भी है, किन्तु 'धम्म' की एक अकेले व्यक्ति के लिए कोई आवश्यकता महसूस नहीं होती, क्योंकि 'धम्म' में नैतिकता सर्वोपरि है। अकेला व्यक्ति नैतिक अथवा अनैतिक हो ही नहीं सकता। जो स्थान धर्म में सर्वोच्च सत्ता 'ईश्वर' का है, वही स्थान 'धम्म' में नैतिकता का है। नैतिकता अथवा अनैतिकता का प्रश्न तभी उठता है, जब व्यक्ति समाज में रहता है। एक अकेले व्यक्ति के लिए नैतिकता का कोई अर्थ नहीं है। 'धम्म' सामाजिक है। समाज है तो धम्म भी नितान्त आवश्यक है।

चूंकि 'धम्म' सामाजिक है, इसलिए इसका आचरण करने वालों द्वारा बहुजन

हिताय, बहुजन सुखाय का ख्याल रखा जाता है, न कि व्यक्ति हित अथवा व्यक्ति सुख का, जैसा कि धर्म में होता है। भगवान बुद्ध का धम्म सधर्म है। धर्म को जीवित रखने और उसके प्रचार हेतु किसी न किसी बाहरी सत्ता का सहारा लिया जाता है। ईश्वर का भय, पाप का डर अथवा कोई अन्य लालच या लोभ आदि बताकर धर्म में विश्वास दिलाया जाता है। पैगम्बर या ईश्वर के पुत्र या अवतार स्वयं अपने धर्म पर आचरण के लिए बाध्य करते है। परन्तु धम्म में ऐसा बिल्कुल नहीं। भगवान बुद्ध से उनके जीवन काल में कई बार आग्रह किया गया कि तथागत अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति कर दें। इस पर उन्होंने उत्तर दिया, **धम्म ही धम्म का उत्तराधिकारी है, धम्म को अपने ही तेज से जीवित रहना चाहिए, किसी मानवीय अधिकार के बल से नहीं।** यदि धम्म की प्रतिष्ठा के लिए हर बार उसके संस्थापक का नाम रटते रहने की आवश्यकता है, तो वह धम्म नहीं। इस प्रकार भगवान बुद्ध ने हर बार उत्तराधिकारी वाली बात को टाल दिया। उन्होंने अपने आप को कभी भी 'मुक्तिदाता' नहीं कहा, 'मार्गदाता' ही कहा। जबकि अन्य धर्मों में उनके संस्थापक अपने को ईश्वर का दूत, ईश्वर का अवतार अथवा ईश्वर का पुत्र आदि बताकर, वे अपने अनुयायियों को मुक्ति अथवा मोक्ष लाभ निश्चित करते थे। भगवान बुद्ध ने अपने आपको केवल 'मार्गदाता' बताया मुक्ति अथवा 'निर्वाण' का प्रयत्न तो व्यक्ति को स्वयं ही करना है, ऐसा कहा।

निर्वाण का अर्थ धम्म में धर्म के मोक्ष से बिल्कुल भिन्न है। धर्म में मोक्ष का मतलब है स्वर्ग का राज्य अथवा स्वर्ग की प्राप्ति, वह भी मृत्योपरान्त। किन्तु 'धम्म' में 'निर्वाण' का मतलब है रागद्वेष से मुक्ति, जो भगवान बुद्ध के बताये मार्ग पर चलने से, इसी जीवन में संभव है। धर्म और धम्म में यह महान भेद हैं।

भगवान बुद्ध के धम्म में कारण और कार्य का ऐसा नियम है, जो विश्व के किसी धर्म में नहीं पाया जाता। हर कार्य का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। भौतिक कार्यो का कारण भी भौतिक होता है। किसी भी कार्य का कोई देवी अथवा बाहरी कारण नहीं होता। धर्म वाले चूंकि ईश्वर आदि देवी शक्तियों में विश्वास रखते हैं, उनकी सत्ता मानते हैं, इसलिए घटनाओं का कारण भी ईश्वर अथवा अन्य देवी शक्ति को मानते हैं। उनके ईश्वर के प्रताप से असम्भव कार्य भी संभव हो सकता है। जो होता है उसमें ईश्वर की मर्जी होती है। बिना ईश्वर की मर्जी के कुछ भी नहीं होता। धम्म में ऐसा कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। व्यक्ति जो भी कार्य करता है उसके लिए वही उत्तरदायी है, कोई देवी-शक्ति अथवा उस शक्ति की मर्जी नहीं।

धम्म की एक और महान विशेषता है कि धम्म व्यक्ति को अंधविश्वास अथवा बिना तर्क के विश्वास करने पर कहीं भी और कभी भी बाध्य नहीं करता। 'धम्म' में हर व्यक्ति को पूरी स्वंत्रता है कि वह बातों को देखें, समझें और उसकी बुद्धि में समाएं, उचित जान पड़ें तब मानें। भगवान बुद्ध ने अपने जीवन काल में कालामों को ऐसी ही सलाह दी थी। विश्व के किसी भी धर्म में बौद्ध धम्म के 'कालाम-सुत्त' जैसी मिसाल नहीं मिलती। ईश्वर आत्मा, मोक्ष, स्वर्ग, नर्क आदि से भी बढ़कर किसी धर्म के अस्तित्व के लिये जो बात है वह अंध-श्रद्धा याने कुछ बातों पर प्रश्न उठा ही नहीं सकते, जैसे हिन्दू अथवा ब्राह्मणी धर्म में वेदों के सत्य होने में संदेह उत्पन्न कर ही नहीं सकते, इस्लाम में पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब को खुदा का पैगाम (संदेश) लाने वाला मानना ही पड़ेगा और ईसाईयत में यीशु को ईश्वर का बेटा मंजूर करना ही पड़ेगा। इन विषयों पर संदेह व्यक्त करने की कोई गुंजाइश नहीं है। तथागत के धम्म में उसके विपरीत खुली छूट है कि उनकी बातें बुद्धि संगत जान पड़े, कल्याणकारी जान पड़े तो मानो अन्यथा नहीं। ऐसी स्वतंत्रता यदि विश्व के हर धर्म में हो, तो उन धर्मों की तो नीवें ही हिल जायेंगी, उनको लोप होते देर नहीं लगेगी।

तथागत के धम्म को छोड़कर अन्य सभी धर्मों में मोक्षदाता निश्चित है। वे लोगों को प्रलोभन देकर बुलाते हैं कि उन पर विश्वास करो और मुक्ति प्राप्त करो। किन्तु धम्म में बुद्ध उपासक को बुलाते नहीं बल्कि उपासक स्वयं ही कहता है:

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
सघं सरणं गच्छामि

मैं बुद्ध की शरण में जाता हूं, मैं धम्म की शरण में जाता हूं, मैं संघ की शरण में जाता हूं। धर्म के ऊपर धम्म की यह महान विजय है। धम्म अद्वितीय है। भगवान तथागत के बताए मार्ग को 'धर्म' नहीं 'धम्म' ही कहना उचित है। ■

चूंकि 'धम्म' सामाजिक है, इसलिए इसका आचरण करने वालों द्वारा बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय का ख्याल रखा जाता है, न कि व्यक्ति हित अथवा व्यक्ति सुख का, जैसा कि धर्म में होता है। भगवान बुद्ध का धम्म सधर्म है। धर्म को जीवित रखने और उसके प्रचार हेतु किसी न किसी बाहरी सत्ता का सहारा लिया जाता है।

गौतम बुद्ध : विश्व के प्रथम सामाजिक-आध्यात्मिक क्रान्तिकारी

■ देवेन्द्र कुमार बैसंत्री

मानव ने अपने लाखों वर्षों के इतिहास के दौरान अनगिनत उतार-चढ़ाव देखे हैं। इनमें कुछ विशेष घटनाएं इतिहास पर अपना प्रभाव छोड़ गयी हैं और कुछ पानी के बुलबुले के समान बिना कुछ किए-किराए मिट गयीं। कुछ धर्म अपने आप में मानवतावादी रहें हैं- किसी न किसी रूप में, कुछ न कुछ दूर तक जीवन के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पहलुओं को प्रभावित किए हैं। सैकड़ों वर्ष पूर्व आज की तरह, इनकी सीमाएं ठीक तरह बंटी हुई नहीं थीं।

सिद्धार्थ गौतम का जन्म 563 (ई. पू.) में हुआ था। उस समय भारत अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बंटा हुआ था। देश में उस समय 16 जनपद और लगभग 9 गणराज्य थे। जनपद किसी राजा के शासनाधीन हुआ करते थे। कुछ गणराज्यों में कुलीन परिवारों का शासन था। जनपदों में कौशल और मगध बहुत शक्तिशाली थे। कौशल नरेश प्रसेनजित और मगध नरेश बिम्बिसार बुद्ध के समकालीन थे। कपिल वस्तु में कुछ शाक्य परिवार बारी-बारी से राज्य करते थे। सिद्धार्थ के जन्म के समय उनके पिता शुद्धोधन की राजा बनने की बारी थी। अत: वे राजा हुए। सिद्धार्थ की माता का नाम महामाया था। उनके जन्म के सातवें दिन महामाया की मृत्यु हो गयी। उसके बाद, उनकी बड़ी मां तथा मौसी प्रजापति ने उनका लालन पालन किया।

सिद्धार्थ की प्रव्रज्या के समय देश में बहुत मानसिक हलचल थी। ब्राह्मणी-दर्शन के अलावा बासठ और दार्शनिक मत थे, जिनमें अक्रियावाद, नियतिवाद, उच्छेदवाद, अन्योन्यवाद, विक्षेपवाद तथा चातुर्यामसंबर-वाद प्रमुख थे। ये सभी ब्राह्मणी दर्शन के विरोधी थे। अक्रियावाद के मुखिया पूर्णकाश्यप की मान्यता थी कि कार्यों का आत्मा पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। नियतिवाद के संस्थापक मक्खली गोसाल का कहना था कि चाहे कोई कुछ भी करे जो होना है होकर रहेगा। उच्छेदवाद के अगुवा अजित केस-कम्बल का उपदेश था कि मनुष्य को जो कुछ भोगना है वह भोग करके ही रहेगा। यज्ञ और होम सब व्यर्थ हैं। अन्योन्यवाद के मुखिया पकुध कच्चायन की शिक्षा थी कि प्राणियों के शरीर का निर्माण सात स्वतंत्र और कभी नष्ट न होने वाले तत्वों से हुआ। जबकि विक्षेपवाद के प्रमुख संजय वेलटिपुत्र का मत परले दर्जे का सन्देहवाद था। वहीं बुद्ध के समकालीन महावीर के चातुर्यामसंवर-वाद की स्थापना थी कि मनुष्य का पुनर्जन्म उसके अतीत और वर्तमान के कार्यों पर ही निर्भर करता है। सिद्धार्थ ने ब्राह्मणी दर्शन तथा उपरोक्त सभी दर्शनों को नकार दिया और 'नए प्रकाश' की खोज में जुट गए।

जब वे राजगृह में थे तभी उन्हें पता चला कि कोलियों और शाक्यों के बीच युद्ध जिसके कारण उन्होंने गृह-त्याग किया था, संभवत: टल गया हैं, तब तक उनकी समस्या ने व्यापक रूप धारण कर लिया था। स्थायी सामाजिक वर्ग-संघर्ष क्षत्रियों में, गृहस्थों में, माता और पुत्र में, पिता और पुत्र में, बहन और भाई में तथा साथी और साथी में समस्या के समाधान के लिए इस संघर्ष के कारण और निवारण ढूंढ निकालना जरूरी था और इसके लिए साधना और शक्ति की आवश्यकता थी। इसकी तैयारी के लिए सिद्धार्थ गौतम को तत्कालीन सभी पंथों के अध्ययन और अभ्यास कर लेने की आवश्यकता महसूस हुई। अत: सर्वप्रथम समाधि मार्ग के अध्ययन और अभ्यास के लिए वे ध्यानाचार्य आलार कालाम से, जो उन दिनों वैशाली में थे, मिलने गए। रास्ते में वे कुछ देर के लिए भृगु मुनि के आश्रम पर रुकें। वहां उन्होंने मुनियों

को तरह-तरह के कष्टदायी तपस्या करते देखा। भृगु ऋषि ने उन्हें तपस्याओं के रहस्य तथा उनसे प्राप्त होने वाले फलों से अवगत कराया। उन्हें लगा कि इस मार्ग द्वारा वे अपनी समस्या को हल नहीं कर पाएंगे। फिर वे आलार कालाम से मिले और उनसे ध्यान की सात पद्धतियां सीख लीं। उसके बाद वे उद्यम रामपूत से मिले और उनसे योगाभ्यास का अध्ययन सीखा जो उनसे एक सीढ़ी आगे था। उसके बाद वह मगध आकर वहां के योगाभ्यास का अध्ययन और अभ्यास किया जो कौशल जनपद में प्रचलित समाधि मार्ग से भिन्न था।

गौतम गया आए और वहां राजर्षि नगरी के आश्रम में, जो उरुवेला में था रहने का निश्चय किया। वहीं निरंजना नदी के पास एक एकान्त स्थान पर उन्होंने घोर तपस्या आरंभ की। उस दौरान एक ऐसा भी समय आया जब उनके शरीर में हिलने-डोलने की भी शक्ति नहीं रही। उसी समय गृहस्थ सेनानी की पुत्री सुजाता, जो पुत्र प्राप्ति के उपलक्ष्य में, निग्राध वृक्ष को खीर चढ़ाने आयी थी, वहां बैठे गौतम को साक्षात् वृक्ष देवता मानकर उन्होंने सोने की कटोरी में खीर अर्पित की।

सिद्धार्थ गौतम को खीर खाने के बाद शक्ति आयी। अब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा अपनाए गये सभी मार्ग व्यर्थ साबित हुए, पर वे निराश नहीं हुए। चालीस दिन के लिए भोजन एकत्रित कर, गया राजमार्ग के पास, एक पीपल के पेड़ के नीचे, इस निश्चय के साथ जा बैठे कि वे बोधि प्राप्त करके ही उठेंगे। चौथे सप्ताह के अन्त में सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्हें स्पष्ट हुआ कि मनुष्य के दुःख और क्लेश का निवारण पंचशीलों-हिंसा न करना, चोरी न करना, व्याभिचार न करना, असत्य न बोलना तथा नशीली चीजों का प्रयोग न करना और आष्टांगिक मार्ग-सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मात, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम तथा सम्यक स्मृति के द्वारा ही हो सकता है तब से गौतम 'सम्यक सम्बुद्ध' हो गये। जिस पेड़ के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था वह बोधि वृक्ष कहलाया।

सिद्धार्थ गौतम को खीर खाने के बाद शक्ति आयी। अब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा अपनाए गये सभी मार्ग व्यर्थ साबित हुए, पर वे निराश नहीं हुए। चालीस दिन के लिए भोजन एकत्रित कर, गया राजमार्ग के पास, एक पीपल पेड़ के नीचे, इस निश्चय के साथ जा बैठे कि वे बोधि प्राप्त करके ही उठेंगे। चौथे सप्ताह के अन्त में सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्हें स्पष्ट हुआ कि मनुष्य के दुःख और क्लेश का निवारण पंचशीलों-हिंसा न करना, चोरी न करना, व्याभिचार न करना, असत्य न बोलना तथा नशीली चीजों का प्रयोग न करना और आष्टांगिक मार्ग-सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मात, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम तथा सम्यक स्मृति के द्वारा ही हो सकता है तब से गौतम 'सम्यक सम्बुद्ध' हो गये। जिस पेड़ के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था वह बोधि वृक्ष कहलाया।

काफी सोच विचार के बाद बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार करने का निश्चय किया। वे गया से चलकर सारनाथ आये और अपने पांचों पुराने रुष्ट साथियों के समक्ष धर्म चक्र का प्रवर्तन आरंभ किया। भूमि उपजाऊ मिली और इस देश में ही नहीं बल्कि अनेक छोटे-बड़े देशों में बौद्ध धर्म छा गया।

विश्व के अधिकतर धर्म, दीन-दुखियों के प्रति करुणा का उपदेश देते हैं। बौद्ध धर्म ने भी यही किया और साथ ही कुछ और भी। इसमें सभी को रूप, रंग, नस्ल, जाति और वर्ण की भिन्नता के बावजूद समानता का दर्जा दिया गया है इसके लिए महामानव बुद्ध ने अनेक साहसिक और क्रान्तिकारी कदम उठाए। उन्होंने वेदों की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को आदर्श सामाजिक व्यवस्था मानने से इंकार कर दिया। ब्राह्मण धर्म के चार वर्णो-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में तीन ऊपरी वर्णो को ही ज्ञान प्राप्ति का अधिकार था। शूद्रों, सभी चारों वर्णों की स्त्रियों और अछूतों को कतई नहीं। यही नहीं इन्हें यानी शूद्रों, स्त्रियों तथा अछूतों को चार आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास में से केवल गृहस्थ आश्रम को ही प्रवेश करने का अधिकार था अन्य में नहीं। भगवान बुद्ध ने इस व्यवस्था को ठुकरा कर सभी को समान अधिकार और अवसर दिये। समानता के अधिकार स्थापित करने के लिए बुद्ध ने कई और कदम उठाये। अपने भिक्खु संघ में उन्होंने जाति और सामाजिक स्तर को कोई स्थान नहीं दिया। उन्होंने बताया

कि सभी अपने कर्मों द्वारा ही बड़े छोटे बनते हैं। जाति व्यवस्था पर कुठाराघात करने के लिए शाक्यमुनि ने भिक्खा वृत्ति को भिक्खुओं के लिए अनिवार्य बनाया। भिक्खु भीख में मिले भोजन पर ही निर्भर करते थे और वह किसी भी जाति का हो सकता था। प्रसंगवश यहां बताया जा सकता है कि भगवान बुद्ध ने अपना अंतिम भोजन चुन्द नामक सुनार के घर से लिया था।

जन्म से अपने को श्रेष्ठ मानने वाले ब्राह्मणवादियों को शाक्य सिंह ने मुंह तोड़ उत्तर दिया था। कई अवसरों पर उन्होंने कहा कि शरीर की रचना और जन्म की प्रक्रिया में एक ब्राह्मण और चंडाल में कोई भेद नहीं है। सुत्तनिपात के ब्राह्मण धार्मिक सुक्त में बुद्ध ने कहा है, स्वर्ण और राख में बहुत स्पष्ट भेद हैं? लेकिन ब्राह्मण का जन्म आम की तरह सूखी लकड़ी के घर्षण से नहीं हुआ। वह आकाश या वायु से नहीं टपका, न ही पृथ्वी को फोड़ कर निकला। ब्राह्मण का जन्म माता की कुक्षि से उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार एक चंडाल का। सभी मनुष्यों की शारीरिक रचना अवश्य बिल्कुल समान हैं-''थोड़ा सा भी फर्क नहीं है। अन्य स्थानों पर यही बात कही गयी है। एक दिन अश्वलायन नामक ब्राह्मण बुद्ध के पास आया और कहा कि ब्राह्मण ही उच्च है पवित्र है, ब्रह्मा के और पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न, उनके रचे हुए तथा उनके उत्तराधिकारी हैं। अन्य किसी जाति के लोग नहीं। अश्वलायन को उत्तर देते हुए भगवान गौतम ने कहा-क्या ब्राह्मण-पत्नियों ऋतुमी नहीं होती, गर्भधारण नहीं करतीं और संतान का प्रसव नहीं करती। यह होते हुए भी क्या ब्राह्मण का यह कहना उचित है कि ब्राह्मण ही उच्च वर्ण के हैं? ...ब्राह्मण ही ब्रह्मा के सुपुत्र हैं... ब्राह्मण उनके उत्तराधिकारी हैं? (मज्झिम निकाय 2 पृष्ठ 85) इसी से मिलती-जुलती बात महामानव बुद्ध के ब्राह्मण भिक्खु बासेद्ध को दिये उत्तर में है जिसका उल्लेख दीर्ध निकाय 3 (पृष्ठ 75) में मिलता है।

ये क्रान्तिकारी विचार शब्दों तक ही सीमित नहीं रहे, कार्यों में भी परिणत हुए। महामानव बुद्ध ने राजाओं, महाराजाओं, वैश्यों और ब्राह्मणों के साथ-साथ अनगिनत दलितों, अछूतों तथा अपराध कर्मियों को बिना किसी हिचक के धर्म में दीक्षित कर लिया। इनमें सुणीत नामक भंगी, सोपाक और सुप्पय डोम, प्रकृति नाम की चंडाल-कन्या, आम्रपाली जैसी वेश्या, उपालि (नाई), धनिम (कुम्हार), सती (मल्लाह) प्रमुख हैं। अंगुलिमाल जैसे हत्यारे तथा सैकड़ों अन्य अपराध कर्मियों को धर्म तथा अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से सुधार कर वे सदमार्ग पर लायें। इनमें कई स्थविर तथा अर्हत को प्राप्त हुए और उपालि ने तो विनय पिटक जैसे महान ग्रन्थ का संकलन किया।

वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान बहुत अच्छा नहीं था। वे गुरुकुलों में छात्र और शिक्षक के रूप में प्रवेश नहीं पाती थीं। वेदों का अध्ययन नहीं करती थी। वे ब्रह्मचर्य आश्रम में दाखिला नहीं ले सकती थी और उपनयन भी नहीं ग्रहण करती थीं। आर्य व्यवस्था में उनके सामाजिक स्तर में काफी गिरावट आ गई थी।

महामानव बुद्ध ने स्त्रियों के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने नारियों को अपने धर्म में दीक्षित किया और भिक्खुणी संघ की स्थापना की। अलग से भिक्खुणी संस्था गठित करने और भिक्खुसंघ की देख-रेख में इसके काम करने के कुछ व्यावहारिक कारण थे। वैसे बुद्ध स्वयं स्त्रियों को बौद्धिकता और आचरण में पुरुषों से कम नहीं मानते थे। सन्यास ग्रहण करने की इन्हें स्वतंत्रता देकर बुद्ध ने स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष ला खड़ा किया। बुद्ध के इस कदम को क्रान्ति और स्त्रियों के लिए आजादी निरुपित करते हुए मैक्समूलर ने अपने हवर्ट लेक्चर में कहा है कि ब्राह्मणी कानून की कष्टदायी बेड़ियां छिन्न-भिन्न हो गयीं और स्त्रियों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी। आध्यात्मिक स्वतंत्रता के इच्छा होने पर सामाजिक रुकावटों से ऊपर उठकर वे इसकी प्राप्ति के लिए जंगलों में जाने के लिए पूर्ण स्वतंत्र थीं। अपने थेरी गाथा की भूमिका में राइस डेविड्स ने कहा है कि अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए भगवान बुद्ध ने शर्त नहीं रखी कि स्त्रियों का कुंआरी होना जरूरी है। सभी स्त्रियों, विवाहित, अविवाहित विधवा यहीं नहीं वेश्याओं के लिए भी उन्होंने अपने धर्म के दरवाजे खोल कर रखे।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कलकत्ता से प्रकाशित महाबोधी में छपे अपने 'द राइज एण्ड फाल ऑफ हिन्दू विमेन' शीर्षक लेख में बुद्ध पर लगाये गये स्त्री विरोधी आरोपों का खण्डन करते हुए जो लिखा है उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है- ''उस व्यक्ति को स्त्री का तिरस्कार करने वाला कैसे कहा जा सकता है जो पुत्री के जन्म को शोक नहीं प्रसन्नता का अवसर मानता है, जो विश्वास रखता था कि जो परिवार एक सच्चरित्र स्त्री को सत्ता सौंपता है उसका पतन नहीं होता, जिसकी मान्यता थी कि औरत सात बहुमूल्य निधियों में से एक है और जो समझता था कि स्त्री एक सर्वोकृष्ट सम्पत्ति है।''

समाज का तीसरा दलित शोषित तबका खेतीहर मजदूरों का है जो शिक्षा और संगठन शक्ति के अभाव में अपने न्यायसंगत और विधि सम्मत मांगों को भी प्राप्त नहीं कर पाता। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक, ''बुद्धा एंड हिज धम्मा'' के प्रथम भाग में ''आरंभि, प्रवृतियां'' शीर्षक के अन्तर्गत जो इस संबंध में लिखा है वह इस बात का प्रमाण है कि सिद्धार्थ गौतम को इस उपेक्षित वर्ग के प्रति कितनी सहानुभूति थी।

एक दिन सिद्धार्थ गौतम अपने कुछ साथियों के साथ अपने पिता के खेत पर गये। वहीं उन्होंने देखा कि खेतीहर मजदूर जिनके पास तन ढ़कने के लिए पर्याप्त

कपड़े भी नहीं है, कड़ी धूप में खेत फोड़ रहे हैं और बांध, बांध रहे हैं। सिद्धार्थ जो मानव द्वारा मानव के शोषण के विरुद्ध थे, इस दृश्य को देखकर द्रवित हो उठे। उन्होंने अपने मित्र से कहा, एक आदमी दूसरे का शोषण करे क्या इसे ठीक कहा जायेगा? मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी कमाई पर गुलछर्रें उड़ाये यह कैसे ठीक हो सकता है?

महामानव बुद्ध कर्मकांड तथा बाह्य आडम्बर के सख्त खिलाफ थे चमत्कार, अलौकिक शक्ति, मुहूर्त निकालने की प्रवृत्ति, फलित ज्योतिष में उनका विश्वास नहीं था। उल्का-पतन और स्वप्न को वे शुभ-अशुभ नहीं मानते थे। सारनाथ में अपने पांचों पुराने भिक्खु साथियों के समक्ष प्रथम धम्म-चक्र प्रवर्तन में उन्होंने कहा था, मांस-मछली से परहेज करने, नंगा रहने, सिर मुड़ाने, जटा बढ़ाने, खुरदरा पोशाक धारण करने, शरीर पर कीचड़ लपेटने एवं यज्ञ करने से भ्रष्ट मनुष्य पवित्र नहीं हो सकते वेद पढ़ने, पुरोहितों को दान-दक्षिणा देने, देवताओं को बलि चढ़ाने, सर्दी-गर्मी में आत्मदमन तथा अमर होने के लिए किये जाने वाले ऐसे ही अनेक तप पतित व्यक्ति को शुद्ध नहीं करेंगे।'' एक अन्य अवसर पर तथागत ने कहा था, ''कर्मकांडों में कोई क्षमता नहीं, प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं और जादू-टोना, झाड़-फूंक में बचाव करने की शक्ति नहीं।'' ये उद्धरण पाल कास्त की पुस्तक ''द गॉस्पल आफ बुद्धा'' से संबंधित अंश का हिन्दी रूपान्तर है।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने विश्व और इस देश को महामानव बुद्ध की देन के संबंध में अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया'' (पृ. 120) में लिखा है, उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है, ''लोक प्रचलित धर्म, अन्ध विश्वास, कर्मकांड और पुरोहित प्रपंच तथा इनसे जुड़े निहित स्वार्थों पर प्रहार करने का साहस बुद्ध में था। ब्रह्म-वैज्ञानिक एवं अभौतिक दृष्टिकोण, चमत्कार, रहस्योद्घाटन, तथा अलौकिक शक्तियों को प्रभावित करने की प्रवृत्ति की भी उन्होंने भर्त्सना की थी। उनका आग्रह तर्क, विवेक और अनुभव के प्रति एवं नैतिकता पर जोर तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का था- ऐसा मनोविज्ञान जिसमें आत्मा का कोई स्थान नहीं था। बासी और घिसी-पिटी ब्रह्म वैज्ञानिक चिन्तन की तुलना में उनका मार्ग पहाड़ों से आती हवा के समान था''।

> **फिर भी यह एक कठोर सत्य है कि महामानव बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद यानि क्षणिकवाद के अपने क्रांतिकारी सिद्धांत को आर्थिक व्यवस्था पर लागू नहीं किया। शायद यह कालपूर्व होता। बौद्ध धर्म के प्रकांड विद्वान राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक बौद्ध दर्शन में लिखा है- ''समाज में आर्थिक विषमता को अक्षुण्ण रखते हुए बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था जातीय ऊंच-नीच के भाव को हटाना चाहा था, जिससे वास्तविक विषमता तो नहीं हटी किन्तु निम्न वर्ग का सद्भाव जरूर बौद्ध धर्म की ओर बढ़ गया।'' इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को भी बुद्ध ने किसी न किसी रूप में स्वीकारा। यही कारण है कि हम 'बुद्ध' के झंडे के नीचे बड़े-बड़े राजाओं, सम्राटों, सेठ-साहूकारों को आते देखते हैं।**

फिर भी यह एक कठोर सत्य है कि महामानव बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद यानि क्षणिकवाद के अपने क्रांतिकारी सिद्धांत को आर्थिक व्यवस्था पर लागू नहीं किया। शायद यह कालपूर्व होता। बौद्ध धर्म के प्रकांड विद्वान राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक बौद्ध दर्शन में लिखा है- ''समाज में आर्थिक विषमता को अक्षुण्ण रखते (बुद्ध ने) वर्ण व्यवस्था जातीय ऊंच-नीच के भाव को हटाना चाहा था, जिससे वास्तविक विषमता तो नहीं हटी किन्तु निम्न वर्ग का सद्भाव जरूर बौद्ध धर्म की ओर बढ़ गया।'' इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को भी बुद्ध ने किसी न किसी रूप में स्वीकारा। यही कारण है कि हम 'बुद्ध' के झंडे के नीचे बड़े-बड़े राजाओं, सम्राटों, सेठ-साहूकारों को आते देखते हैं, और भारत से बाहर-श्रीलंका, चीन, जापान, तिब्बत में तो उनके धर्म को फैलाने में राजा और व्यापारी सबसे पहले आगे बढ़े।

राहुल सांकृत्यायन ने महावग्ग से उद्धरण देकर अपनी उपरोक्त पुस्तक में बताया है कि महाजनों और दास स्वामियों को शान्त करने के लिए बुद्ध ने ऋणी और दासों को प्रव्रज्या देने पर रोक लगा दी थी। यही नहीं जब मगध राजा बिम्बिसार के सैनिक युद्ध में जाने की जगह भिक्खु बनने लगे और राजा ने बुद्ध से शिकायत की तो बुद्ध ने कहा ''भिक्खुओं राजसैनिकों को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिए।''

भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण ई. पू. 483 में रात्रि के तीसरे पहर कुशीनगर में हुआ था। उस दिन वैशाख पूर्णिमा थी। बौद्धों की मान्यता है कि भगवान बुद्ध का जन्म और ज्ञान प्राप्ति भी वैशााख पूर्णिमा को ही हुई थी। इसी कारण बौद्ध जगत में इस तिथि का विशेष महत्व है। ■

सत्यमेव जयते

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

बाबासाहेब बीसवीं शताब्दी के एक महान राष्ट्रीय नेता थे। वे बुद्धिजीवी, विद्वान तथा राजनीतिज्ञ थे। देश के निर्माण में उनका महान योगदान है। उन्होंने दलितों व शोषितों को अन्य लोगों के समान ही कानूनी अधिकार दिलाने के लिए अनेक आंदोलनों का नेतृत्व किया और समाज के दलित वर्ग के लाखों लोगों को उनके मानवाधिकार दिलाए। उन्होंने भारत के संविधान के निर्माण के लिए संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में एक अमिट छाप छोड़ी। वे सामाजिक न्याय के संघर्ष के प्रतीक हैं।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की स्थापना प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर शताब्दी समारोह समिति द्वारा की गई सिफारिशों को अमल में लाने के लिए की गई थी।

प्रतिष्ठान का मुख्य उद्देश्य देश-विदेश में लोगों के बीच बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की विचारधारा को आगे बढ़ाना तथा उसके प्रचार के लिए कार्यक्रमों तथा गतिविधियों को लागू करना है। प्रतिष्ठान को भारतरत्न डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के शताब्दी समारोह के दौरान् चिह्नित किए गए कार्यक्रमों तथा योजनाओं का प्रबंधन, प्रशासन तथा उन्हें आगे बढ़ाने का दायित्व सौंपा गया है।

योजनाएं/कार्यक्रम/परियोजनाएं:

- **डॉ. अम्बेडकर के महापरिनिर्वाण दिवस/जन्म दिवस के अनुपालन/ समारोह :**

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के तत्वावधान में बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का जन्म दिवस 14 अप्रैल को और महापरिनिर्वाण दिवस 6 दिसम्बर को संसद भवन के उद्यान में समारोहपूर्वक मनाया जाता है। इस गरिमापूर्ण दिवस पर भारत के महामहिम राष्ट्रपति राष्ट्र की ओर से श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। साधारणतया समारोह में महामहिम राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, मंत्रीगण, सांसद गण एवं अन्य उच्च पदाधिकारीगण उपस्थित रहते हैं। इसके अतिरिक्त भारी संख्या में प्रबुद्ध जन लाखों की संख्या में बाबासाहेब के अनुयायी बाबासाहेब को श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

- **विश्वविद्यालयों/संस्थाओं में डॉ. अम्बेडकर पीठ :**

इस योजना की शुरुआत 1993 में की गई थी। इसका उद्देश्य विद्वानों, विद्यार्थियों तथा अकादमियों को सभी प्रकार से सुसज्जित अध्ययन केन्द्र उपलब्ध कराना है, जिससे वे डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के विचारों एवं आदर्शों को समझने, उनका मूल्यांकन करने तथा उनका प्रचार-प्रसार करने के लिए आवश्यक उच्च अध्ययन एवं शोध कार्य कर सकें। अब तक कुल दस अम्बेडकर पीठ विभिन्न महत्त्व वाले क्षेत्रों जैसे विधिक अध्ययन, शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन एवं विकास, सामाजिक नीति एवं सामाजिक कार्य, समाज कार्य, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानव-विज्ञान, दलित आन्दोलन एवं इतिहास, अम्बेडकरवाद एवं सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक न्याय में स्थापित किए जा चुके हैं।

- **डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की मासिक पत्रिका सामाजिक न्याय संदेश :**

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का प्रकाशन दिसम्बर 2002 से हो रहा है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित, सशक्त

एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के 'संदेश' को आम नागरिकों तक पहुंचाने में 'सामाजिक न्याय संदेश' की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों व उनके दर्शन तथा फाउन्डेशन के कार्यक्रमों एवं योजनाओं को आम नागरिकों तक पहुंचाने का काम बखूबी कर रहा है।

इसकी एक प्रति का मूल्य रु. 10/- है। एक वर्ष के लिए चंदे की दर रु. 100/-, दो वर्ष के लिए रु. 180/- और तीन वर्ष के लिए रु. 250/- है। सामाजिक न्याय संदेश प्रतिष्ठान की वेबसाइट www.ambedkarfoundation.nic.in पर भी उपलब्ध है।

- **डॉ. अम्बेडकर चिकित्सा सहायता योजना :**

यह योजना मूलरूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के ऐसे गरीब मरीजों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है, जिनकी पारिवारिक वार्षिक आय रु. 1,00,000/- से कम हो और उसे गम्भीर बीमारियों जैसे किडनी, दिल, यकृत, कैंसर, घुटना और रीढ़ की सर्जरी सहित कोई अन्य खतरनाक बीमारी हो, जिसमें सर्जिकल ऑपरेशन की जरूरत हो।

संशोधित योजना-2014 के अनुसार, आवेदन पत्र को जाति प्रमाण पत्र, आय प्रमाण पत्र राशन कार्ड की सत्यापित प्रतियों और संबंधित अस्पताल के चिकित्सा अधीक्षक द्वारा उचित रूप से हस्ताक्षरित अनुमानित लागत प्रमाण पत्र की मूल प्रति के साथ जमा करना पड़ता है। आवेदन पत्र का अनुमोदन और अग्रसारण डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की आमसभा (जनरल वॉडी) के सदस्यों या स्थानीय वर्तमान सांसद (लोकसभा या राज्यसभा) या संबंधित जिला के जिला अधिकारी, उप जिलाधिकारी, आयुक्त द्वारा या संबंधित राज्य/संघ क्षेत्र के स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण विभाग के सचिव द्वारा किया जाता है। इलाज के लिए अनुमानित लागत का 100 प्रतिशत सर्जरी से पहले ही सीधे संबंधित अस्पतालों को एक किस्त में जारी कर दिया जाता है। विभिन्न बीमारियों के लिए अधिकतम राशि को निश्चित कर दिया गया है जैसे हृदय शल्य चिकित्सा के लिए रुपये 1.25 लाख, किडनी सर्जरी/डाइलिसिस के लिए रुपये 3.50 लाख, कैंसर सर्जरी/कीमोथिरेपी/रेडियोथिरेपी के लिए रुपये 1.75 लाख, मस्तिष्क सर्जरी के लिए रुपये 1.50 लाख, किडनी/अंग प्रत्यारोपण के लिए रुपये 3.50 लाख, रीढ़ की सर्जरी हेतु रुपये 1.00 लाख और अन्य जीवन घातक बीमारियों के लिए रुपये 1.00 लाख। अस्पताल को यह भुगतान चेक या डिमांड ड्राफ्ट द्वारा किया जाता है।

- **अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति से संबंधित विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक (दसवीं कक्षा) परीक्षा हेतु डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय योग्यता पुरस्कार योजना :**

इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जाति और जनजाति से संबंधित योग्य विद्यार्थियों को एकमुश्त नकद पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। देश में प्रत्येक बोर्ड के लिए चार पुरस्कार निर्धारित हैं। तीन सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को क्रमशः 60,000/-, रु. 50,000/- और रु. 40,000/- प्रदान किए जाते हैं। यदि इन तीन विद्यार्थियों में से कोई लड़की/छात्रा नहीं होती तो इसके अतिरिक्त सर्वाधिक अंक पाने वाली लड़की/छात्रा को रु. 40,000/- का विशेष पुरस्कार प्रदान किया जाता है। योजना में अनुसूचित जाति एवं जनजाति, प्रत्येक के लिए, 10,000 एकमुश्त राशि की 250 विशेष योग्यता पुरस्कारों की परिकल्पना भी की गई है, जो उन छात्रों को प्रदान किए जाते हैं जो प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान के बाद सर्वाधिक अंक प्राप्त करते हैं।

- **उच्च माध्यमिक परीक्षाओं (12वीं कक्षा) में अनुसूचित जाति से संबद्ध योग्य विद्यार्थियों के लिए डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय योग्यता पुरस्कार योजना :**

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान ने 2007-08 के दौरान् कमजोर वर्गों के विद्यार्थियों की पहचान करने, उन्हें

बढ़ावा देने और उनकी सहायता करने के लिए अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को योग्यता पुरस्कार प्रदान करने की योजना तैयार की। पुरस्कार में, किसी भी शैक्षणिक बोर्ड/परिषद द्वारा आयोजित 12वीं स्तर की परीक्षा में नियमित विद्यार्थी के रूप में तीन सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को क्रमशः चार वर्गों अर्थात् कला, विज्ञान (गणित के साथ), विज्ञान (जीव विज्ञान और या गणित के साथ) तथा वाणिज्य में रु. 60,000/-, रु. 50,000/- तथा रु. 40,000/- के प्रदान किए जाते हैं। योग्यता श्रेणी के प्रथम तीन स्थानों के बाद प्रत्येक वर्ग में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाली अगली तीन लड़कियों/छात्राओं को प्रत्येक को रु. 20,000/- की दर से विशेष पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। इस तरह प्रत्येक बोर्ड के लिए कुल 12 पुरस्कार होते हैं।

- **अनुसूचित जाति के अत्याचार-पीड़ितों हेतु डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय राहत योजना :**

इस योजना की प्रकृति आकस्मिक व्यवस्था के तौर पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 के तहत अपेक्षाकृत जघन्य अपराधों के पीड़ितों को तात्कालिक मौद्रिक सहायता प्रदान करने की है। इस योजना के अन्तर्गत सहायता राशि सीधे पीड़ित या उसके पारिवारिक सदस्यों या आश्रितों को प्रतिष्ठान द्वारा तब प्रदान की जाती है, जबकि उपर्युक्त अधिनियम के तहत अपराध की प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज कर ली जाती है और संबंधित राज्य सरकार/केन्द्र शासित प्रदेश द्वारा इस संबंध में सूचित कर दिया जाता है। परिवार के कमाऊ सदस्य की हत्या/मृत्यु पर रु. 5.00 लाख की सहायता राशि प्रदान की जाती है, गैर कमाऊ सदस्य की मृत्यु/हत्या पर सहायता राशि रु. 2.00 लाख, कमाऊ सदस्य के स्थायी विकलांगता पर सहायता राशि रु. 3.00 लाख, गैर कमाऊ सदस्य के स्थायी विकलांगता पर सहायता राशि रु. 1.50 लाख तथा बलात्कार के लिए सहायता राशि रु. 2.00 लाख है तथा ऐसी आगजनी, जिससे कोई परिवार पूर्णतः बेघर हो जाए तो सहायता राशि रु. 3.00 लाख निर्धारित की गई है।

- **डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान राष्ट्रीय निबंध प्रतियोगिता योजना :**

प्रतिष्ठान की इस वार्षिक निबंध प्रतियोगिता का उद्देश्य विद्यालयों/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/संस्थाओं के छात्रों को सामाजिक मुद्दों पर लिखने के लिए प्रोत्साहित करना तथा मूलभूत सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर डॉ. अम्बेडकर के विचारों के प्रति उनकी रुचि को जगाना है। यह प्रतियोगिता मान्यता प्राप्त स्कूलों (माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक अर्थात् 9वीं कक्षा से 12वीं कक्षा तक)/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/संस्थाओं के विद्यार्थियों हेतु है। विद्यालयों से प्राप्त हिन्दी और अंग्रेजी में सबसे अच्छे तीन निबंधों के लिए पुरस्कार की राशि रु. 10,000 से रु. 25,000 तक है और महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/संस्थाओं के विद्यार्थियों के लिए यह राशि रु. 25,000/- से रु. 1,00,000 तक है।

- **महान संतों के जन्म दिवस समारोह हेतु डॉ. अम्बेडकर योजना :**

इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न संस्थाओं/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों/ गैर सरकारी संगठनों को, महान संतों जैसे- संत कबीर, गुरु रविदास, गुरु घासीदास, चोखामेला, नंदनार, नारायण गुरु, नामदेव, भगवान बुद्ध, महर्षि वाल्मीकि, महात्मा फूले, सावित्री बाई फूले आदि का जन्म दिवस समारोह मनाने हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के लिए अधिकतम अनुदान राशि रुपये 5.00 लाख तथा गैर सरकारी संगठनों के लिए रुपये 2.00 लाख की राशि निर्धारित की गई है।

- **सामाजिक परिवर्तन हेतु डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार :**

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा भारत और मानवीय परिवार के प्रति की गई वृहद् विलक्षण सेवाओं के पुण्य स्मरण में इस पुरस्कार की शुरुआत वर्ष 1995 में की गई थी। यह पुरस्कार असमानता, अन्याय और शोषण के कारणों के विरुद्ध सख्ती से मामले उठाने और सुलझाने के उदाहरणीय योगदान तथा सामाजिक समूहों के बीच

सामंजस्य, सामाजिक परिवर्तन के लिए सामाजिक सौहार्द और मानवीय गरिमा के आदर्शों की स्थापना के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्ति(यों) या समूह(ों) को प्रदान किया जाता है।

प्रति वर्ष एक पुरस्कार, जिसमें रु. 15.00 लाख की राशि और प्रशस्ति पत्र दिये जाने का प्रावधान है।

- **कमजोर वर्गों के उत्थान तथा सामाजिक समझ हेतु डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार :**

इस राष्ट्रीय पुरस्कार की स्थापना वर्ष 1992 में की गई थी और इस पुरस्कार हेतु चयन किसी प्रकाशित पुस्तक या फिर जन आंदोलन के आधार पर होता है, जिसने समाज के कमजोर वर्गों के जीवन की गुणवत्ता पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला हो। प्रति वर्ष एक पुरस्कार प्रदान करने का प्रावधान है, जिसमें रु. 10.00 लाख की राशि और प्रशस्ति पत्र दिया जाता है।

- **अंतर्जातीय विवाहों के द्वारा सामाजिक एकता हेतु डॉ. अम्बेडकर योजना :**

इस योजना का उद्देश्य, अंतर्जातीय विवाह जैसे सामाजिक रूप से साहसिक कदम उठाने वाले, नए विवाहित दम्पति को उनके वैवाहिक जीवन के शुरुआती दौर को सही ढंग से चलाने के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है। विधिसम्मत अंतर्जातीय विवाह के प्रोत्साहन हेतु राशि रु. 2.50 लाख प्रति विवाह है। योग्य दम्पति को प्रोत्साहन राशि का 50 प्रतिशत उनके संयुक्त नाम के डिमांड ड्राफ्ट द्वारा तथा शेष 50 प्रतिशत राशि उनके संयुक्त नाम में पांच वर्ष की अवरुद्धता अवधि के साथ सावधि जमा में रखा जाता है।

- **डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र :**

''डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र'' राष्ट्रीय महत्त्व के एक विश्व स्तरीय बहुआयामी अध्ययन के प्रति समर्पित होगा। यह केन्द्र जनपथ और डॉ. आर.पी. रोड के प्रतिच्छेदन पर एक महत्त्वपूर्ण अवस्थिति पर 3.25 एकड़ से अधिक क्षेत्र में लुटियन दिल्ली की महत्त्वपूर्ण इमारतों से घिरा होगा। केन्द्र की मुख्य सुविधाओं में शोध एवं प्रसार केन्द्र, मीडिया सह इंटरप्रेटेशन केन्द्र, पुस्तकालय, प्रेक्षागृह, सम्मेलन कक्ष और प्रशासनिक स्कंध शामिल होंगे।

- **डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक :**

डॉ. अम्बेडकर ने 6 दिसंबर, 1956 को अपने निवास 26, अलीपुर रोड़, दिल्ली में अंतिम सांसें ली थीं। इस स्थल को महापरिनिर्वाण स्थल के रूप में पवित्र माना जाता है और तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा इसे राष्ट्र को समर्पित किया गया था। 2 दिसंबर, 2002 को डॉ. अम्बेडकर के जीवन और लक्ष्यों पर फोटो गैलरी की स्थापना की गई थी। भारत सरकार ने इसी जगह एक अच्छी तरह अभिकल्पित और पूर्ण रूप से विकसित डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय स्मारक के निर्माण की प्रक्रिया शुरू की है।

- **बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संकलित कार्य :**

महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित बाबासाहेब अम्बेडकर के संकलित कार्यों के अनुवाद और प्रकाशन का कार्य डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा हिन्दी एवं 8 अन्य क्षेत्रीय भाषाओं-मलयालम, तमिल, तेलुगु, बंगाली, उड़िया, पंजाबी, उर्दू एवं गुजराती में करवाया जा रहा है। हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित होने वाले 360 खंडों (प्रत्येक भाषा के 40 खंड) में से 197 खंड प्रकाशित हो चुके हैं। शेष के 163 खंड अभी मुद्रण और अनुवाद की प्रक्रिया में हैं।

प्रतिष्ठान ने बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संकलित कार्यों के खंडों को अंग्रेजी में भी पुनः प्रकाशित किया है तथा अंग्रेजी के 10 खण्डों का प्रकाशन ब्रेल लिपि में किया है। शेष खंड ब्रेल लिप्यंतरण की प्रक्रिया में है।■

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर - जीवन चरित

■ धनंजय कीर

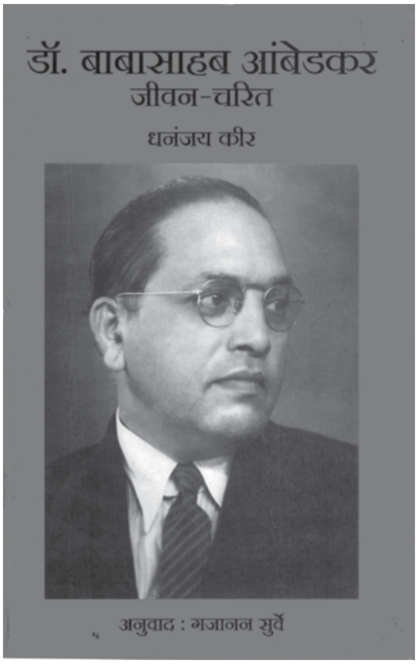

जहाज के अन्य प्रमुख यात्री गांधी जी के अनशन के बारे में बोल रहे थे। उनमें से एक यूरोपियन मुसाफिर अम्बेडकर की ओर अंगुली-निर्देश कर कहने लगा, 'हिंदुस्तान के इतिहास के नये पृष्ठ जो लिख रहा है, यही है वह युवा नेता।' जहाज की चर्चा में अस्पृश्यों को सीटें न देने के बारे में ब्रिटिश अधिकारी और कूटनीतिज्ञों के बीच एक बड़ा षड्यंत्र रचा गया था। उन षड्यंत्र वाले व्यक्तियों की यह चाल थी कि अस्पृश्यता की समस्या के प्रांतीय राज्यों के अंतर्गत होने से, उन्हें केंद्रीय विधानमंडल में सीटें देने की जरूरत नहीं। उन्होंने यह व्यूह रचा था कि उनके हिस्से में आने वाली सीटें मुसलमान और यूरोपियन लोगों को दी जाएं। उनके उस षड्यंत्र का पट हमने पूरी तरह से उध्वस्त किया, इसलिए अम्बेडकर को अपार हर्ष हुआ। जहाज में स्थित प्रतिनिधियों का यह मत बना कि जो सुधार प्राप्त होंगे उनका स्वीकार किया जाए। अम्बेडकर का मत बना कि और कुछ विशेष घटना न हुई तो सायमन कमीशन की सिफारिशों की अपेक्षा और ज्यादा अधिकार प्राप्त होंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता।

उस समय जहाज पर द्रुतगति से चलकर व्यायाम कर लेने पर आनंद बाबासाहेब को नहीं मिला क्योंकि उनके पांव में दर्द था। वे अपने प्रिय वीरपुरुष-नेपोलियन की जीवनी पढ़ने में तल्लीन थे। गांधी जी द्वारा यरवदा से निकाले हरिजन आंदोलन संबंधी पत्रक उन्होंने पढ़े। उन्होंने अपने मित्रों को लिखा कि, 'गांधी जी हमारे पक्ष के हो रहे हैं, परन्तु अंतरजातीय विवाह और सहभोज में अनुकूल होने तक की अवस्था में गांधी जी का मन अभी तक नहीं पहुंचा है। गांधी जी अनशन न करें; क्योंकि अकारण ही वे अपने प्राण गंवा बैठेंगे।' अस्पृश्यता निवारण संस्था के प्रमुख कार्यवाहक श्री ए.वी. ठक्करबाप्पा द्वारा निकाले हुए पत्रक की उन्होंने बहुत बड़ी विधायक और सार्थ आलोचना की। हिन्दू समाज सुधारकों के लिए वह आलोचना पथप्रदर्शक है। हमेशा की पद्धतिनुसार वह तीखी और प्रक्षोभणशील नहीं थी। व्यवहारी और निर्विवाद सूचनाओं से ओतप्रोत थी। उसमें वे कहते हैं, 'स्पृश्य और अस्पृश्य दोनों वैध बंधनों से या अलग निर्वाचक मंडल के बदले में संयुक्त निर्वाचक मंडल का हेर-फेर करने से कभी भी एकात्म नहीं होंगे, सम्मिलित नहीं होंगे। केवल प्रेम ही एक बंधन है जो उन्हें इकट्ठा ला सकेगा। और न्याय तथा समता की स्वीकृति के बिना प्रेम का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। जब सवर्ण हिन्दू को उसके विचार और आचार में क्रांति करने के लिए विवश करेंगे, तभी अस्पृश्यों का उद्धार होगा। मुझे ऐसा लगता है कि सवर्ण हिन्दू के विचारों में क्रांति होने पर ही यह समस्या हल होगी। इसलिए अस्पृश्य वर्ग को नागरिक के अधिकार प्राप्त कर देने के लिए कुएं का पानी भरना, स्कूलों में उनके लड़कों को एक साथ बिठाना, देहातों की चावड़ियों में उन्हें प्रवेश देना, बैलगाड़ियों, तांगे, नावें, मोटरकारें इत्यादि यातायात के साधनों का वे अबाध उपभोग कर सकें-ऐसी मुहिम शुरू करें।

इस मुहिम को फलदायी बनाने की दृष्टि से समाज-सेवकों की एक फौज ही हमें बनानी होगी। वे स्वयंसेवक अपने अधिकारों के लिए लड़ने की अस्पृश्य जनता को उत्तेजना देंगे और उन्हें प्रवर्तित करेंगे। सरकार-दरबार में न्याय प्राप्त करने के लिए पैसे की ओर अन्य आवश्यक मदद वे उन्हें करेंगे। यह बात सच है कि इस कार्यक्रम की वजह से समाज में बड़ी खलबली मच जायेगी और खून खराबा भी होगा। लेकिन मेरे मतानुसार ये बातें टालना संभव नहीं है। कम से कम प्रतिरोध का मार्ग गोलमाल कार्यक्रम है। वह अस्पृश्यता का निर्मूलन करने में सक्षम नहीं होगा। हमें ऐसे जबर्दस्त कार्यक्रम का नियोजन करना चाहिए जिसकी वजह से स्पृश्य हिंदुओं के पुरातन आचार-विचारों को प्रबल धक्का पहुंचे। जब स्पृश्य हिंदू को ऐसा लगता है कि कोई कठिन समय उभरा है, तब वह सोच-विचार करने के

लिए प्रवृत्त होता है और एक बार विचार के पथ पर उसका कदम पड़ा कि पुराना मार्ग छोड़कर नये मार्ग का अनुसरण करना पहले से अधिक संभव हो जाता है। धीरे-धीरे उपदेश कर लोगों को न दुखाते हुए, उनके मत परिवर्तित करने का जो कार्यक्रम होता है, उसमें एक बड़ा दोष यह है कि वह कार्यक्रम लोगों को सोच-विचार करने के लिए विवश नहीं करता। जबर्दस्त निर्णायक प्रसंग के अतिरिक्त, सोच-विचार या हलचल करने के लिए अन्य लोकमत कभी तैयार नहीं होता। लाखों वर्ष तत्वज्ञान बताकर, सौम्यता से उपदेश करने पर लोकमत के लिए जो प्रेरणा इसके पहले कभी प्राप्त नहीं हुई; वही प्रेरणा महाड़ के तालाब पर या नासिक के काले राम पर या मलबार के गुरुवायुर मंदिर पर मोरचे लगाते ही तुरन्त मिल गयी।

दूसरी बात यह कि जीवन-संघर्ष की होड़ में हिस्सा लेने के लिए अस्पृश्यों को समान मौका नहीं मिलता। अस्पृश्य समाज की दरिद्रता और दु:ख के लिए जो बातें और कठिनाइयां मुख्यतया उत्तरदायी हैं, उनमें समान मौके का अभाव प्रमुख है। स्पृश्यों में स्थित अस्पृश्यता की भावना के कारण ही इसे यह समान मौका प्राप्त नहीं हो सकता। उसके लिए व्यवसाय के दरवाजे खोल दिये जाएं। इस विषमता के खिलाफ लोकमत बनाने के लिए जगह-जगह पर संस्था स्थापित कर इस प्रश्न को हल करने की आवश्यकता है।'

'तीसरी बात है कार्यकर्ताओं का चुनाव। कार्यकर्ता किराए के न हो। अस्पृश्यों की उन्नति के लिए लगन और आस्था वाले लोग आवश्यक हैं। उन्हें अस्पृश्य समाज में से ढूंढ़ निकालना चाहिए। अस्पृश्योद्धार के निमित्त से खुद का स्वार्थ साधने और चुप्पी साध लेने वाले लोग नहीं चाहिए।' पत्र के अंत में तालस्ताय के बोल उद्धृत कर अम्बेडकर ने कहा, 'जो प्रेम कर सकते हैं, वे ही सेवा कर सकते हैं।'

भूमध्य सागर में जहाज बहुत हिलने लगा। अम्बेडकर ने अपनी मनोभावना व्यक्त की कि सागर के गुस्से की परवाह न करने वाले जहाज जल्द ही निर्माण होंगे। उन्हें ऐसा भी लगा कि मानव को यह बात असंभव नहीं। यहां से लिखे हुए एक पत्र में वे कहते हैं, 'मित्र-परिवार जोड़ने का कौशल मुझ में नहीं।' उन्हें ऐसा लगता था कि, गंभीर मुद्रा, किताबी कीड़ों की वृत्ति और चिंतनशीलता के कारण यह होता होगा। फिर भी जब

दूसरी बात यह कि जीवन-संघर्ष की होड़ में हिस्सा लेने के लिए अस्पृश्यों को समान मौका नहीं मिलता। अस्पृश्य समाज की दरिद्रता और दु:ख के लिए जो बातें और कठिनाइयां मुख्यतया उत्तरदायी हैं, उनमें समान मौके का अभाव प्रमुख है। स्पृश्यों में स्थित अस्पृश्यता की भावना के कारण ही इसे यह समान मौका प्राप्त नहीं हो सकता।

के रियासतदार और फलटण की दीवान गोडबोले के साथ अम्बेडकर का जहाज पर अच्छा परिचय हुआ। गोडबोले के बारे में अम्बेडकर का मत अच्छा बन गया। जेनेवा का कस्टम हॉल देखकर उन्हें संतोष हुआ। उन्हें वह वास्तुशिल्पकला का एक उत्कृष्ट नमूना लगा; सौंदर्य की प्रतिमा ही लगी। जिसकी वजह से वह भव्य और सुन्दर कलाकृति निर्माण हुई, उस मुसोलिनी के बारे में उन्होंने धन्यवाद दिए।

लंदन पहुंचते ही उन्हें मालूम पड़ा कि संयुक्त समिति की सभा 17 नवम्बर को ही शुरू हुई। इस समय प्रतिनिधियों की संख्या सीमित ही थी। राष्ट्रीय सभा के नेताओं की अनुपस्थिति साफ दिखाई दे रही थी। प्रतिनिधियों में गुट और फूट देखकर अम्बेडकर का मन उदास हुआ। मुसलमानों की जाति विशिष्ट सभी मांगें उनको प्राप्त होने पर भी हिन्दुस्तान के लिए जिम्मेदार राज्यपद्धति की मांग अन्य नेताओं के साथ करने में उन्हें मुसलमान नेता साथ नहीं दे रहे थे। वह देखकर अम्बेडकर को बुरा लगा। यह अम्बेडकर का पक्का मत हो गया कि मुसलमान नेता हमेशा एकता से, स्वतंत्र गुट से बर्ताव करते थे और हिंदू नेता पूर्व परंपरा के अनुसार कटे हुए, विभाजित और एक-दूसरे से अलिप्त रहते थे। मुसलमान नेताओं के बारे में अम्बेडकर के मत अधिक साफ होने लगे। मुसलमान नेता स्वार्थ-परायण थे। इतना ही नहीं, वे हिन्दू कर्मठों की तरह पुरानी दकियानूसी और सामाजिक दृष्टि से प्रतिगामी थे। यह देखकर उन्हें सदमा लगा। उन्हें यह बात जंच गई कि इस तरह के संकुचित और अधोगामी मनोवृत्ति के नेताओं पर अस्पृश्य वर्ग की उन्नति के लिए निर्भर रहना धोखे की बात है। गजनवियों के बंगाल सनातनी हिंदुओं द्वारा मंदिर प्रवेश का विरोध करने के लिए किये हुए तार को उन्होंने उल्लेख किया। उन्हें ऐसा लगा कि यह बात बहुत धोखे की है और इस बात पर हिंदुस्तान के सुधारकों को विचार करना चाहिए। उनका यह भी मत हुआ कि सनातनी हिन्दुओं की भांति भारतीय मुसलमान भी एक अजब चीज है। अम्बेडकर अपने पत्र में लिखते हैं, 'केमालपाशा से भारतीय मुसलमानों को खूब बातें सीखने लायक है।' उस पत्र में उन्होंने कहा कि हमें केमालपाशा के बारे में बड़ा आदर और अपनापन लगता है। अमानुल्ला जैसे नेता के प्रति भारतीय

मुसलमान नेताओं के मन में आदर नहीं है। इसका कारण अमानुल्ला के विचार प्रगतिशील थे। वे समाज क्रांतिवादी थे। और भारतीय मुसलमानों की धार्मिक दृष्टि को सुधार तो एक महान पाप लगता है।

गोलमेज परिषद् के तीसरे अधिवेशन का कार्यक्रम रूपरेखा के अनुसार संपन्न हुआ। पिछली दो परिषदों के कार्यक्रम का पूरक काम करना और पुष्टि जोड़ना, यही उस समय का प्रमुख कार्य था। लोथियन समिति पर्सी और डेविडसन समिति के निवेदन के अनुरोध से सुधार और सूचना करना भी उसका कार्य था। उस परिषद् ने यह फैसला दिया कि प्रत्येक बालिग व्यक्ति को मतदान का अधिकार देना आज की परिस्थिति में अव्यवहार्य है। यह भी तय किया गया कि निर्वाचक मंडल विशाल किये जाएं, स्त्रियों को कुछ मात्रा में मतदान का अधिकार दिया जाए। रियासतदारों का उत्साह ठंडा पड़ गया था। वे समय बरबाद कर रहे थे। परिषद् ने तय किया कि अस्पृश्य वर्ग के एक बड़े विस्तृत भाग को निर्वाचक मंडल मिल जाए। वाणिज्य सुरक्षा समिति में अम्बेडकर ने काम किया। जन्म, जाति, धर्म पर आधारित विषमता के बंधन और कानून रद्द किये जाएं, इस तरह की विनती करने वालों के निवेदन-पत्र अम्बेडकर, जयकर, सर कावसजी जहांगीर, जोशी, केलकर, सप्रू, नानकचंद, एन.एन. सरकार ने हस्ताक्षर कर ब्रिटिश प्रधानमंत्री को प्रस्तुत किया।

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में इंपीरियल होटल से बाबासाहेब ने अपने घर एक पत्र लिखा। उस पत्र में वे कहते हैं कि, 'गोलमेज परिषद् के बारे में प्रतिनिधियों में उत्साह नहीं दिखाई देता। परिषद् के कार्य की ओर ब्रिटिश जनता पहले जैसे कोतूहल और आस्था से ध्यान देती दिखाई नहीं देती। अमरीका का कर्ज देने की ओर ध्यान आकृष्ट हो गया है। संघ राज्य कैसा हो, इस प्रश्न का ऊहापोह करने की व्यवस्था उसमें हैं। परंतु संघ राज्य कब निर्माण होगा इसके बारे में समय-सीमा का नामोल्लेख नहीं है। जाति विशिष्ट प्रश्न खत्म होने पर भी मुसलमान प्रतिनिधि पहले की तरह हिंदुओं के साथ कट कर बर्ताव करते हैं। रियासतदारों को तो ऐसा लगता है कि अपना परम्परागत अनियंत्रित बड़प्पन कायम रखा जाए। हमें ऐसा नहीं लगता कि आपस में विभाजित लोग तिसरैत से कुछ ठोस प्राप्त कर सकेंगे।'

24 दिसम्बर 1932 को परिषद् का कार्य खत्म हुआ। उस समय विश्व में सभी ओर दिखाई देने वाले निरुत्साह के वातावरण और मुसलमानों द्वारा दिखाई गई अनास्था की वजह से हिंदुस्तान का ध्येय दूर ही रह गया। अम्बेडकर तुरन्त भारत के लिए लौट पड़े।

इसी दरमियान मंदिर प्रवेश के आंदोलन ने सभाओं और समाचारपत्रों द्वारा बड़ी खलबली मचाई थी। दसों दिशाएं गुंज उठी थीं। केलाप्पन के साथ में भी अनशन करता हूं, इस तरह की गांधी जी की धमकी की वजह से उनके अनुयायियों में से अनेकों की कलई खुल गई। अब यह स्पष्ट हुआ कि स्पृश्य हिन्दुओं ने गांधी जी के प्राण बचाने के लिए जल्दबाजी में कच्चा करारनामा किया था। यह उथला आंदोलन और छिछली सहानुभूति अब कम हो लगी थी। जिस झामोरिन के उत्सव में मुसलमान हिस्सा ले सकते थे, उस झामोरिन ने गुरुवायुर मंदिर को खोलने से इंकार कर दिया।

अब गांधी जी भी प्रतिज्ञा की डोरी से लोकतंत्र के खंभे की ओर सरकने लगे। उन्होंने कहा, 'अगर पोनाई तहसील के बहुसंख्य लोगों ने अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश का विरोध किया तो मैं अपनी मांग वापस ले लूंगा।' बहुसंख्य लोगों ने अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश का विरोध किया तो मैं अपनी मांग वापस ले लूंगा।' बहुसंख्य लोगों ने मंदिर-प्रवेश के पक्ष में स्वीकृति दी; फिर भी झामोरिन मंदिर नहीं खोल रहा था। इसी समय रंगा अय्यर ने अस्पृश्यता निवारण विषयक विधेयक केंद्रीय विधानमंडल में पेश किया। उस तरह के विधेयक एम.सी. राजा, गयाप्रसाद सिंह, बी.सी. मित्र ने केंद्रीय विधानमंडल में पेश किये। गांधी जी ने अपने अनशन का दिन 1 जनवरी 1933 तक स्थगित कर दिया और महाराज्यपाल उस अस्पृश्यता निवारण विधेयक के बारे में कौन-सा रवैया तय करते हैं, इसकी वे बाट जोहने लगे। अम्बेडकरवादियों का यह आरोप था कि, 'यदि गांधी जी भारत के अनभिषिक्त राजा है; यदि उनका शब्द यानी कानून इस तरह लोग मानते हैं, तो गांधी जी यह शोरगुल क्यों मचा रहे हैं।'

अम्बेडकर गंगा नामक जहाज से 23 जनवरी 1933 को बंबई वापस लौटे। समता दल ने उनका स्वागत किया। जहाज से नीचे उतरते ही 'टाइम्स आफ इंडिया' पत्र के प्रतिनिधि को दी गई मुलाकात में उन्होंने कहा कि, ब्रिटिश लोगों को हिन्दुस्तान को जिम्मेदार पद्धति का राज्य देने के लिए रियासतदारों की उत्सुकता या विरोध पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

मंदिर-प्रवेश विधेयक के बारे में पूछते ही उन्होंने कहा, 'उस संबंध में मैं जो कुछ सुन रहा हूं, उससे लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखाई देते। यह सुनकर उन्हें अफसोस हुआ कि उस विधेयक पर मद्रास विधान परिषद् में या केंद्रीय विधानमंडल में चर्चा करने के लिए महाराज्यपाल तुरन्त अनुज्ञा नहीं देंगे। गांधी जी को अस्पृश्यों के मंदिर-प्रवेश के लिए अपने प्राणों की बाजी नहीं लगानी चाहिए और महाराज्यपाल को उस विधेयक को दबाव में नहीं रखना चाहिए। उन्होंने ऐसा मत दिया कि उस बात से जनमत के खिलाफ होने पर भी उन्हें अपने निर्णायक अंतिम अधिकार का इस्तेमाल करना चाहिए।

बैलार्ड पीयर पर ही अम्बेडकर को गांधी जी का तार प्राप्त हुआ। उन्होंने अम्बेडकर को भेंट के लिए यरवदा निमंत्रित किया था। अम्बेडकर ने गांधी

जी को जवाबी तार द्वारा सूचित किया कि दिल्ली से वापस लौटते ही वे उनसे मिलेंगे। बंबई के मुकाम में ही उन्हें बर्मी नेता बा.मा. और यु.चि. हैंग के तार प्राप्त हुए। बर्मा को हिंदुस्तान से राजनीतिक दृष्टि से अलग न किया जाए, इस विचार के जो बर्मी नेता थे, वे केंद्रीय विधान मंडल के भारतीय नेताओं और अम्बेडकर के साथ कुछ संविधनात्मक समस्याओं की चर्चा करने के लिए दिल्ली आने वाले थे। इसलिए अम्बेडकर अपना दिल्ली का पता उन्हें सूचित करें, ऐसा उस तार का आशय था। देश के सभी प्रदेशों के अस्पृश्य के हित दिये गये धीरोदात्त संघर्ष के प्रति अम्बेडकर का हृदय से आभार व्यक्त किया।

महाराज्यपाल ने गोलमेज परिषद् के प्रतिनिधियों को अनौपचारिक बैठक के लिए दिल्ली बुलाया। तद्नुसार डॉ. अम्बेडकर दिल्ली गए। वहां से वापस लौटने पर 4 फरवरी 1933 को हम आपसे मिलेंगे ऐसा गांधी जी ने तार द्वारा सूचित किया। यह स्पष्ट ही है कि ब्रह्म देश के नेताओं से अम्बेडकर मिल नहीं सके।

शिवतरकर, डोलस, शांतराम उपशाम, कांबले, घोरपड़े और केशवराव जेधे के साथ अम्बेडकर तय किये हुए समय पर यरवदा कारागृह में गांधी जी से मिलने गये। गांधी जी ने खड़े होकर मधुर मुस्कान से अतिथियों का स्वागत किया। थोड़े ही समय में चर्चा मंदिर-प्रवेश के प्रश्न की ओर मुड़ गयी। डॉ. सुब्बरायन और रंगा अय्यर के विधायकों का समर्थन करने के बारे में गांधी जी ने अम्बेडकर से अनुरोध किया। अम्बेडकर ने वैसा करने से साफ इंकार किया। क्योंकि डॉ. सुब्बरायन के विधेयक के अनुसार अस्पृश्यता की पद्धति मूलतः पाप है, इसलिए उसका धिक्कार नहीं किया गया था। उस विधेयक के अनुसार केवल इतनी मांग की गई थी कि अगर सार्वमत मंदिर-प्रवेश के लिए अनुकूल होगा तो मंदिर खोले जाएं। लेकिन मंदिर में जाकर मूर्ति पूजा करने के अधिकार उन्हें हो या न हों, इसके बारे में विधेयक मौन था। अम्बेडकर ने कहा कि, 'अस्पृश्य वर्ग को अब चातुर्वर्ण्य के शूद्र के रूप में जीवन व्यतीत नहीं करना हैं हिन्दू धर्म मेरा बौद्धिक समाधान नहीं कर सकता। मुझे उससे संतोष नहीं हो सकता। उस तरह का संतोष मानना मेरे सदसद् विवेक बुद्धि के साथ प्रतारणा करने जैसा होगा। सचमुच मुझे हिन्दू कहलाने की इच्छा नहीं होती। बुरी रूढ़ियां और रीतिरिवाज सभी धर्मों में होते हैं। ईसाई लोगों में गुलामी की पद्धति थी। उस धर्म का समर्थन नहीं था। धर्म के नाम पर खड़ी की गई बुरी रूढ़ियों और रीतियां, और धर्म का समर्थन न होने वाली बुरी रीतियां इनमें मूलतः ही फर्क है। चातुर्वर्ण्य की निर्मित जन्म पर यानी मनुष्य की कक्षा के बाहर की बात पर की गई है। जिस धर्म में मुझे नीच का दर्जा दिया गया है, मेरा धर्म है, ऐसा में कैसे मान लूं? यह दुष्ट पद्धति चलती रहनी है, तो मंदिर-प्रवेश का क्या उपयोग?'

गांधी जी ने कहा, 'चातुर्वर्ण्य कल्पना में असमानता नहीं है। उसमें विधातक कुछ भी नहीं दिखाई देता। स्पृश्यों द्वारा किये गये पाप का अल्प निरसन और प्रायश्चित और तद्द्वारा हिन्दू धर्म की शुद्धि इसी दृष्टि से वह आंदोलन हाथ में लिया गया है। हम इस समय स्तब्ध रहें तो उसका लाभ सरकार और सनातनी दोनों उठायेंगे। इसका मुझे डर लगता है। मुझे ऐसा लगता है कि यह धर्म सुधार होने से अस्पृश्यों का ऐहिक दर्जा अपने आप बढ़ जायेगा।' अम्बेडकर ने उन्हें बताया कि यदि अस्पृश्य वर्ग का राजनीतिक, धार्मिक और शैक्षिक दर्जा बढ़ेगा, तो उनका मंदिर-प्रवेश अपने आप होगा।

गांधी जी से 'हरिजन' साप्ताहिक को भेजे संदेश में भी अम्बेडकर ने अपना मत फिर से व्यक्त किया, 'अस्पृश्यता जातिभेद का आविष्कार या परिणति है। जब तक जातियां हैं, तब तक अस्पृश्य लोग रहेंगे ही। जातिभेद का निर्मूलन करने से ही अस्पृश्यों का उद्धार होगा। हिन्दू धर्म की तिरस्करणीय और दुष्ट रूढ़ियों से मुक्ति करना, यही एक बात हिन्दुओं को भविष्य के संघर्ष से बचा सकती है।' उन्हें उत्तर देते समय गांधी जी ने कहा, 'अम्बेडकर जैसा मत अनेक सुशिक्षितों का है। लेकिन मैं उनसे सहमत नहीं हो सकता।'

गांधी जी से 'हरिजन' साप्ताहिक को भेजे संदेश में भी अम्बेडकर ने अपना मत फिर से व्यक्त किया, 'अस्पृश्यता जातिभेद का आविष्कार या परिणति है। जब तक जातियां हैं, तब तक अस्पृश्य लोग रहेंगे ही। जातिभेद का निर्मूलन करने से ही अस्पृश्यों का उद्धार होगा। हिन्दू धर्म की तिरस्करणीय और दुष्ट रूढ़ियों से मुक्ति करना, यही एक बात हिन्दुओं को भविष्य के संघर्ष से बचा सकती है।' उन्हें उत्तर देते समय गांधी जी ने कहा, 'अम्बेडकर जैसा मत अनेक सुशिक्षितों का है।

पुणे से आने के बाद अम्बेडकर ने विधान परिषद् की चर्चा में भाग लिया। ग्राम पंचायत विधेयक पर भाषण करते समय उन्होंने हिन्दू समाज पर कड़ी टिप्पणी की। विधेयक का उद्देश्य यह था कि गांव की पंचायत पर मुसलमान और अस्पृश्य सदस्यों का चुनाव हो। उस भाषण में कुछ मुद्दों पर विदारक टिप्पणी

करते हुए अम्बेडकर ने कहा, 'महाराज, हिन्दुस्तान यूरोप नहीं है। इंग्लैंड हिन्दुस्तान नहीं। इंग्लैंड में जातिभेद नहीं। हम में है। इसलिए जो राज्य पद्धति इंग्लैंड के लिए उचित है, वह हमारे लिए उपयुक्त होगी ही, ऐसा नहीं। वास्तविकता ध्यान में रखनी चाहिए। हमें इस तरह की राज्य पद्धति चाहिए कि जिसमें मुझे मतदान का ही नहीं, मेरे समाज के प्रतिनिधि विधान परिषद् में भेजने का भी अधिकार होना चाहिए। मेरे प्रतिनिधियों को वहां होने वाली चर्चा में ही नहीं, निर्णय करने के कार्य में भी अधिकार होना चाहिए। इसलिए मेरा यह मत है कि जातीय प्रतिनिधित्व बुरा नहीं। वह जहर नहीं है। भिन्न जातियों की सुरक्षा की दृष्टि से यह जातीय पद्धति की राज्य व्यवस्था कल्याणकारी है। मुझे ऐसा नहीं लगता कि उसके कारण संविधान को कुछ न्यूनता प्राप्त होती है।' इतने में एक सदस्य चिल्लाया, 'शोभा प्राप्त होती है!' तब अम्बेडकर ने कहा, 'जी हां, उससे संविधान की शोभा प्राप्त होती है!' अम्बेडकर ने आगे कहा, 'न्यायालय के क्षेत्र में जातीय प्रतिनिधित्व की आवश्यकता इसलिए है कि अनेक बार न्यायालयीन निर्णयों में जातीय वृत्ति दिखाई पड़ी है। और कुछ मामलों में तो यह भी दिखाई पड़ा है कि न्यायाधीशों ने अपने अधिकार का दुरुपयोग किया है।' उदाहरणस्वरूप उन्होंने जिनमें ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर वादी प्रतिवादी थे, ऐसे कुछ मुकदमों का हवाला भी दिया।

इस भाषण से विधान परिषद् और समाचारपत्रों में एक ही हलचल मच गयी। दूसरे दिन कुछ सदस्यों ने अम्बेडकर के भाषण की वजह से सभी न्यायाधीशों की बदनामी हुई है, ऐसा कहकर उनके खिलाफ शोर किया। उस पर अम्बेडकर ने कहा, 'सभी न्यायाधीशों का धिक्कार करने का मेरा उद्देश्य नहीं था; या विशिष्ट जाति के न्यायाधीशों पर गाली-गलौज करने का मेरा मकसद नहीं था। आखिर किसी तरह यह मामला खत्म हुआ।

12 फरवरी 1933 को मंदिर-प्रवेश के विधेयक के बारे में अम्बेडकर ने अपना निवेदन प्रकाशित किया। उसकी एक प्रति 'प्रिय महात्मा जी को' यरवदा कारागृह में भेजी। रंगा अय्यर के विधेयक के बारे में उन्होंने कहा, 'अस्पृश्य वर्ग को इस विधेयक का समर्थन करना संभव नहीं। क्योंकि वह विधेयक एक तो मंदिर-प्रवेश को लोकमत पर निर्भर रखता है और अस्पृश्यता पाप है, यह बात यह विधेयक नहीं मानता। पाप और अन्याय अधिकतर लोगों के हाड़-मांस में बस गये हैं या अधिकतर लोग उस पर अमल करते हैं; इसलिए वे सुसह्य नहीं सकते। अगर अस्पृश्यता पाप है और वह अन्याय रूढ़ि है, ऐसा एक बार विश्वास होने पर अधिकतर हिन्दू उसका पालन कर रहे हों, तो भी अस्पृश्यों के मत के अनुसार उस रूढ़ि का किसी भी प्रकार का कारण न बताते हुए तुरन्त समूल विनाश होना चाहिए। अगर इस तरह के रीति-रिवाज नीतिबाह्य और सार्वजनिक हित के प्रतिकूल हो तो न्यायालय भी तद्नुसार न्याय करते हैं। और रंगा अय्यर विधेयक का यही प्रमुख दोष है। अस्पृश्यता पाप है तो उस पाप का, अन्याय का विनाश बहुमत पर निर्भर रखना यानी अस्पृश्यता पाप नहीं और अन्याय नहीं, यह कहने जैसा है।

बहुजन समाज ने किया इसलिए वह पाप नहीं, वह अन्याय कभी भी नष्ट नहीं होंगे। नीतिमत्ता का यह मूल तत्व है कि कोई बात अगर पाप है तो बहुमत का विचार न करते हुए उसका निर्मूलन होना चाहिए। व्यावहारिक दृष्टि से इस समस्या की ओर देखा जाए, तो उच्च शिक्षा, उच्च अधिकार पद और आजीविका के उत्तम मार्ग के लाभ से ही उनकी सच्ची उन्नति होगी। जीवनचर्या में एक बार सुस्थिर होने पर उन्हें मान-सम्मान प्राप्त होगा और इस तरह उनकी उन्नति होने पर सनातनियों की धार्मिक दृष्टि में क्रांति होगी और यदि वह नहीं हुई तो भी अस्पृश्यों का विशेष अहित नहीं होगा। दूसरी बात यह कि इसमें स्वाभिमान की समस्या भी जुड़ी हुई है। 'कुत्तों और भारतीयों को प्रवेश मना है' इस तरह के बोर्ड लगाने वाले यूरोपियन लोगों की सांस्कृतिक संस्थाओं में प्रवेश पाने के लिए जिस तरह हिंदू याचना नहीं करते, उसी तरह मंदिर पर 'तमाम हिन्दू और कुत्तों सहित सभी प्राणियों को प्रवेश है सिर्फ, अस्पृश्यों के लिए मना है,' इस तरह का बोर्ड होने से अस्पृश्य वर्ग उस जगह प्रवेश पाने के लिए याचना नहीं करता।''

इसलिए अम्बेडकर ने कहा, 'स्पृश्य हिन्दुओं से मेरा कहना है कि आप मंदिर खोलें या न खोलें, इस प्रश्न पर सोच-विचार आप करें। मैं उसके लिए आंदोलन नहीं करूंगा। मनुष्य के पवित्र व्यक्तित्व के प्रति सम्मान रखना आपको सभ्यता का लक्षण लगता है तो आप मंदिर खोलें और सज्जन जैसा बर्ताव करें। सज्जन बनने की अपेक्षा अगर आप को हिन्दू जन के रूप में शेखी बघारना हो, तो मंदिर के द्वार बंद करो और आत्मनाश करो। मुझे उसके साथ कुछ भी लेना-देना नहीं है। मंदिर प्रवेश, अस्पृश्यता निवारण के मार्ग की एक सीढ़ी है। वह उनकी सामाजिक उन्नति की अंतिम सीमा नहीं है, ऐसा हिन्दू स्वीकार करें तो जिस तरह ब्रिटेन द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य स्वीकारने के लिए भारतीय लोग तैयार थे, उसी तरह अस्पृश्य वर्ग मंदिर-प्रवेश को उनकी पूरी उन्नति के मार्ग का एक पड़ाव समझकर उस आंदोलन का समर्थन करने का विचार करेंगे।

'जो धर्म असमानता का समर्थन करता है, उसका विरोध करने का उन्होंने निश्चय किया है। अगर हिन्दू धर्म अस्पृश्यों का धर्म है तो वह समानता का धर्म होना चाहिए। फिर उन्हें उसे बाहरी न मानकर अपना मानना चाहिए। अगर हिंदू धर्म को सामाजिक समता का धर्म बनना है तो उसके कानून में अस्पृश्यों को मंदिर-प्रवेश देने तक का ही सुधार करना

काफी नहीं होगा। उसके लिए चातुर्वर्ण्य अस्पृश्यता की जननी है क्योंकि जातिभेद और अस्पृश्यता असमानता के अन्य रूप हैं। यह नहीं किया तो अस्पृश्य वर्ग के लोग मंदिरों के ही नहीं, हिंदू धर्म का भी त्याग करेंगे क्योंकि मंदिर-प्रवेश स्वीकृत कर खुश होना पाप के साथ समझौता करने जैसा है; मनुष्य मात्र में स्थिति पवित्र भावना का विक्रय करने जैसा है।' आखिर उन्होंने गांधी जी से एक महत्वपूर्ण निर्णायक प्रश्न पूछा, 'मंदिर-प्रवेश का प्रश्न हल होने पर अस्पृश्य लोग जाति-पांति और चातुर्वर्ण्य के उन्मूलन का प्रश्न हाथ में लेंगे तो उस समय महात्मा जी किसका पक्ष लेंगे? अगर वे सनातनियों का पक्ष लेने वाले हैं तो आज हम उनके पक्ष में नहीं है। कल होने वाले शत्रु को आज मित्र कहने का कोई अर्थ नहीं।'

भारत के रा.ब. श्रीनिवासन, मलिक प्रेमराय आदि अस्पृश्य वर्गीय नेताओं ने अम्बेडकर के विचार का जोरदार समर्थन किया।

अपने पत्रक में गांधी जी ने उत्तर दिया, 'ऐसी बात नहीं कि मैं हिन्दू परिवार में पैदा हुआ इसीलिए हिन्दू हूं। मैं श्रद्धा से और अपनी खुशी से भी हिंदू हूं। मैं जिस हिंदू धर्म को मानता हूं, उसमें ऊंच-नीच नहीं है। लेकिन डॉ. अम्बेडकर को वर्णाश्रमी झगड़ा करना है, इसलिए मैं उनके पक्ष में नहीं रह सकता। क्योंकि मेरी यह श्रद्धा है कि वर्णाश्रम हिंदू धर्म का अभिन्न अंग है।'

गांधी जी-अम्बेडकर का मंदिर-प्रवेश के बारे में वादविवाद चल रहा था, तब अम्बेडकर को रत्नागिरि के पेट किले में भागो जी शेठ के बनाए हुए मंदिर उद्घाटन करने के लिए वीर सावरकर ने आग्रहपूर्वक आमंत्रण भेजा। अम्बेडकर ने सावरकर को सूचित किया कि, 'मैं पूर्वनियोजित कामकाज की वजह से नहीं आ सकता। लेकिन आप समाज सुधार के क्षेत्र काम कर रहे हैं, उसके बारे में अनुकूल अभिप्राय देने का यह मौका मैं ले रहा हूं। अगर अस्पृश्य वर्ग को हिन्दू समाज का अभिन्न अंग होना है, तो केवल अस्पृश्यता निर्मूलन होकर नहीं चलेगा। चातुर्वर्ण्य का निर्मूलन होना चाहिए। जिन थोड़े लोगों को इसकी आवश्यकता महसूस हुई है, उनमें से एक आप हैं, यह कहते मुझे हर्ष होता है।'

गांधी जी-अम्बेडकर का मंदिर-प्रवेश के बारे में वादविवाद चल रहा था, तब अम्बेडकर को रत्नागिरि के पेट किले में भागो जी शेठ के बनाए हुए मंदिर के उद्घाटन करने के लिए वीर सावरकर ने आग्रहपूर्वक आमंत्रण भेजा। अम्बेडकर ने सावरकर को सूचित किया कि, 'मैं पूर्वनियोजित कामकाज की वजह से नहीं आ सकता। लेकिन आप समाज सुधार के क्षेत्र में काम कर रहे हैं, उसके बारे में अनुकूल अभिप्राय देने का यह मौका मैं ले रहा हूं। अगर अस्पृश्य वर्ग को हिन्दू समाज का अभिन्न अंग होना है, तो केवल अस्पृश्यता निर्मूलन होकर नहीं चलेगा।

सनातनी सुधारक ओर सनातनी गुट अपने रवैये में जो चरम कटुता थी, उसको त्याग कर अम्बेडकर के रवैये के अनुकूल हो ही रहे थे कि अम्बेडकर उनकी ओर पीठ फिरा रहे थे। हिंदुओं द्वारा चलाये मंदिर-प्रवेश के आंदोलन में अपने लोगों से सहयोग देने के बारे में कहने के बदले, अम्बेडकर ने उनकी दृष्टि राजनीतिक लाभ की ओर मोड़ दी। वैसा करने का कारण भी था। अस्पृश्यता निवारण संघ के केंद्रीय मंडल के वे यद्यपि सदस्य थे, तो भी संस्था की किसी भी सभा में वे उपस्थित नहीं रहे थे। बीच में गांधी जी ने उस संस्था का नाम 'हरिजन सेवक संघ' रखा। 'हरिजन सेवक संघ' के कार्यकारिणी मंडल में अस्पृश्य नेता समाविष्ट नहीं किये गये थे, इसलिए अस्पृश्य नेताओं के मन में उस संस्था के उद्देश्य के बारे में संशय हुआ तथा इसीलिए अम्बेडकर ने उस संस्था से संबंध-विच्छेद किया। अस्पृश्य नेताओं में से अनेकों को ऐसा लगा कि गांधी जी के आंदोलन का प्रयोजन अम्बेडकर के आंदोलन का पूरक न होकर मारक है। इतना ही नहीं, गांधी जी का आंदोलन एक राजनीतिक दांव था। वह गांधी जी का सच्चा कार्यक्रम नहीं था, ऐसा भी उन्हें लगता था। अम्बेडकर वादियों को यह डर लगा रहता था कि मंदिर-प्रवेश के आंदोलन से उत्पन्न हुए उत्सव में और ईश्वर चिन्तन में अस्पृश्य लोग मग्न हो जायेंगे। राजनीतिक और आर्थिक समता के रवैये की ओर उनका ध्यान नहीं जायेगा। अनबन का सच्चा कारण यही था। अम्बेडकर के निवेदन की प्रतिक्रिया समाचारपत्रों में कैसी हुई, यह दर्शनीय है। अम्बेडकर के निवेदन में स्थित विदारक सत्य से भड़के हुए राष्ट्रीय वृत्ति के समाचारपत्रों ने अम्बेडकर के खिलाफ द्वेष की लहर ही फैला दी। उनमें से कुछ लोग तो उन्हें 'भीमासुर' कहने लगे। बंबई के एक समाचार पत्र ने उन्हें व्यंग्यपूर्वक 'ब्रह्मद्वेष्टा' उपाधि अर्पण की। अम्बेडकर के अनुयायियों को 'ब्रह्मद्वेष्टा' उपाधि दूषण नहीं, भूषण है, ऐसा लगा। जिस तरह सर वैलेन्टाइन चिरोल द्वारा तिलक को व्यंग्य से प्रदान की गई 'भारत के असंतोष के

जन्म' उपाधि तिलक के जीवित-कार्य का यथार्थ वर्णन ठहरती है, उसी तरह 'ब्रह्मद्वेष्टा' अम्बेडकर का अमोल अर्थपूर्ण और यथार्थ वर्णन है, ऐसा उन्हें लगता था। ब्रह्मद्वेष्टा ब्राह्मण्य का कट्टर विरोधक और हिन्दू समाज ब्राह्मण्य पर यानी जातिनिष्ठ उच्च-नीचता के तत्व पर आधारित था। वह समाज अन्याय और विषमता, असमानता और अस्पृश्यता का प्रतीक था। ऐसे समाज में स्थित अन्याय और विषमता, अस्पृश्यता और शोषण का उन्मूलन करना ब्रह्मद्वेष्टा का जीवित-कार्य होता है। अम्बेडकर का ध्येय वही होने से वे सच्चे क्रांतिकारी, सच्चे देशप्रेमी और सच्चे उद्धारकर्ता ठहरते हैं।

रंगा अय्यर के मंदिर-प्रवेश के विधेयक का दकियानूसी सनातनियों ने ही विरोध नहीं किया बल्कि कुछ अधपगले या सनातनी समाज-सुधारकों ने भी किया। विरोधकों का कहना था कि अस्पृश्यों का मंदिर-प्रवेश सार्वमत से निश्चित न किया जाए। धार्मिक बारे में कानून के द्वारा हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। गांधी जी को प्रेषित तार में पंडित मदनमोहन मालवीय ने बड़े जोश से कहा, 'मंदिरों के मामले में कानून का दूर से भी संबंध नहीं होना चाहिए; इसलिए हम उस विधेयक का विरोध करते हैं। बंबई में जो करार हुआ, उसकी शर्तों के अनुसार यह विधेयक नहीं है।' और बंबई का करार यानी पुणे-करार की पुनरुक्ति था। गांधी जी और राज जी की इस हलचल में कुछ बड़ा षड्यंत्र होगा ऐसा ब्रिटिश राज्यकर्ताओं को संशय हुआ। उन्हें ऐसा लगता था कि गांधी जी ब्रिटिशों के खिलाफ अस्पृश्यों के गुट को उभार रहे हैं। एक तो उनका रवैया धार्मिक क्षेत्र में तटस्थवादी था और दूसरी बात यह कि राजनीतिक आंदोलन कभी भी न करने वाले हिंदुओं का भी कानून द्वारा अस्पृश्यता निर्मूलन करने का निश्चय देखकर उनके मन में सभ्रम पैदा हुआ। आखिर भारतमंत्री ने महाराज्यपाल को विधानमंडल में अस्पृश्यता विषयक विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी। डी. सुब्बारायन और नारायण नंबियार के विधेयक अखिल भारतीय स्वरूप के होने के कारण महाराज्यपाल ने उन्हें नामंजूर कर दिया। शेष सभी विधेयक केन्द्रीय विधान मंडल में चर्चा के लिए पेश करने की उन्होंने अनुज्ञा दी। आखिर केवल रंगा अय्यर का विधेयक बचा, शेष अपने आप नष्ट हो गए। रंगा अय्यर का विधेयक 24 मार्च 1933 को केंद्रीय विधान मंडल में चर्चा के लिए प्रस्तुत हुआ। लेकिन कांग्रेस के सदस्यों के ध्यान न देने की वजह से, सरकार द्वारा दिखाई गई उपेक्षा की वजह से और सनातनी वृत्ति के सदस्यों की आज का काम कल पर छोड़ने की वृत्ति से आखिर उस विधेयक को भी बुरी स्थिति में इतिश्री हुई।

मंदिर-प्रवेश के बारे में प्रसिद्धि पत्रक निकालने के बाद अस्पृश्यों में स्थित आध्यात्मिक और धार्मिक अंधश्रद्धा की वृत्ति के खिलाफ अम्बेडकर ने जोर से प्रचार शुरू किया। इस धार्मिक अंधश्रद्धा की वजह से और आध्यात्मिक पागलपन से अनेक शताब्दियों से अस्पृश्यों की दुर्बलता बढ़ती ही जा रही थी। देवपूजा के अपेक्षा भरपेट अन्न मिलना अधिक महत्वपूर्ण कार्य है ऐसा उन्होंने उनके मन पर प्रतिबिंबित करना शुरू किया। ठाणे जिले के कसारा नामक गांव में आयोजित एक परिषद् में भाषण करते हुए उन्होंने कहा, 'हमें हिन्दू धर्म में समानता चाहिए और चातुर्वर्ण्य नष्ट होना चाहिए। इस देश की राजनीति में जो बात इसके पहले कभी घटित हुई थी, वह आज घटित हो रही है। इस देश में आज परिस्थिति है कि निम्न वर्ग का व्यक्ति परिश्रम करे और उच्च वर्ग का व्यक्ति उसका फल प्राप्त करे। अंग्रेजी राज्य आने पर भी उसने कभी क्रांति नहीं करायी, क्योंकि वह विदेशी सत्ता थी। तुम में फूट पड़े, ऐसा कुछ मत करो और एकता बढ़ाओ। द्वयता नष्ट करो, द्वयता की वजह से कार्यनाश होता है। इर्द-गिर्द की परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करो। कोंकण और नासिक में सत्याग्रह हुए। अगर वे न हुए होते तो हमें जो राजनीतिक सत्ता प्राप्त हुई है, वह न होती। नासिक सत्याग्रह ने इतनी प्रचण्ड खलबली मचा दी थी कि सत्याग्रह की वह खबर 'लंदन टाइम्स' में पढ़कर लोगों को अचरज होता था। जो कुछ बुरा घटित होता है, वह ईश्वर करता है। ईश्वर ने हमें अस्पृश्यों में पैदा किया। यह परमात्मा की ही इच्छा है, इस तरह की भावना छोड़ दो। सम्प्रति तुम ईश्वर के बारे में सोचो ही मत। हमारा जो कुछ बुरा हुआ है, अन्य लोगों ने अपना उल्लू सीधा किया और हमारा नुकसान किया इसलिए; गत जन्म के पाप के कारण नहीं। महारों को भूमि नहीं, इसका कारण वह अन्य लोगों ने ली इसलिए। अस्पृश्यों की नौकरियां नहीं, इसका कारण अन्य लोगों ने वे छीन ली इसलिए। तकदीर पर भरोसा रखकर बर्ताव मत करो। जो काम करना है, वह अपनी ताकत के बल पर करो।' बंबई के माझगांव क्षेत्र में फरवरी के अंतिम सप्ताह में भाषण करते हुए उन्होंने कहा, 'अन्य समाज के लोग मुझे गालियां दे रहे हैं, तो दूसरी ओर मेरे समाज में मेरा गौरव हो रहा है।

'स्वजन गौरव करें और दूसरे गाली-गलौज करें, यह तो तिलक जी का अनुभव था, वही अनुभव मुझे हो रहा है। मैंने अपने दिल में यह दृढ़ निश्चय किया है कि जब तक मुझे गालियां दे रहे हैं, तब तक मैं अपने समाज के लिए जो कुछ कर रहा हूं उचित है, यह समझने में कोई हर्ज नहीं, पिछले 2000 वर्षों से हिंदू समाज में जो अस्पृश्यता चल रही है, उसे नष्ट करने का इतना प्रयास अब तक किसी ने भी नहीं किया। जिसका कारण यह कि अस्पृश्य वर्ग के बिना हिंदुस्तान और हिंदू समाज को भी कोई चारा नहीं, यह बात उन्हें अब ज्ञात हो गई है। यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि इतना बड़ा जो प्रयास चल रहा है, वह अस्पृश्यों की बुरी हालत देख कर उन्हें दया आयी है इसलिए नहीं; बल्कि खुद के कार्य की सिद्धि के लिए, राष्ट्र के लिए यह प्रयास

करना उन्हें अवश्यभावी है।

'अपने आंदोलन का ध्येय अन्याय, जुल्म, झूठी परंपराओं और विशिष्ट खास अधिकार का निर्मूलन कर लोगों को गुलामी से मुक्त करना है। अपने निरंतर, अखंड आंदोलन की वजह से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ी है। मृत जानवरों का मांस भक्षण मत करो, फिर हम क्या खाएं यह पूछने वाले लोगों से मैं कहना चाहता हूं कि परिस्थिति में सुधार लाने के लिए पतिव्रता वेश्या के जीवन को नहीं अपनाती। सम्मान के साथ जीना सीखो। नैराश्य का युग समाप्त हो गया। नये युग का प्रारंभ हो गया है। तुम्हारे राजनीति और कानून बनाने की सत्ता में हिस्सा ले सकने की वजह से आज तुम्हारे लिए सब कुछ संभव है।'

सम्मानपत्र प्रदान करने के लिए आयोजित एक दूसरी सभा में डॉ. अम्बेडकर ने कहा, 'स्तुतिपरक अलंकारयुक्त भाषा से तुमने तुम्हारे जैसे एक व्यक्ति की गुणातीत ईश्वर बनाया है। ये तुम्हारी भावनाएं तुम्हारे कल्याण के लिए विनाशकारी हैं। दूसरे को ईश्वर बनाना और अपने उद्धार का बोझ दूसरे पर डालना, यह भावना तुम्हें कर्तव्य से वंचित करने वाली है। इस भावना से अगर तुम चिपके रहोगे तो तुम प्रवाह के साथ बहने वाली लकड़ी के शहतीर बनोगे। नये युग में प्राप्त हुई राजनीतिक सत्ता निरर्थक साबित होगी। इस नादान कल्पना ने तुम्हारे दिल में घर करने से तुम्हारे वर्ग का समूल नाश हुआ है। इस भावना ने तुम्हारा ही नहीं, सारे समाज का नाश किया है। हमारे हिंदुस्तान देश के हीनत्व का अगर कोई कारण होगा तो यह देवतापन है। अन्य देशों के लोग अगर समाज विपत्ति में पड़ा है, तो एकता स्थापित कर अपना उद्धार कर लेते हैं, परंतु अपने धर्म ने हमारी ऐसी धारणा कर दी है कि मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। समाज पर बड़ी विपत्ति आने पर अथवा समाज की प्रगति में अवरोध उत्पन्न होने पर देवता हम में अवतार लेता है और विपत्ति का निवारण करता है। सामूहिक रूप से संकट का मुकाबला न कर वे ईश्वर के अवतार का इंतजार करते हैं। हिन्दू समाज गुलामी में सड़ रहा है इसका विचार किया जाए तो वे अपने उद्धार के लिए ईश्वर की बाट जोह रहे हैं, यही उसका कारण है, यह मेरी दृढ़ धारणा है। इस जगत में ईश्वर हो या न हो, इसका विचार करने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं। इतनी बात सही है कि विश्व में जो कुछ घटित होता है, वह मनुष्य ही निर्माण करता है। तुम्हारा उद्धार करने के लिए कोई भी नहीं आयेगा। अगर तुम अपने मन में ठान लोगे तो तुम्हारा उद्धार तुम ही करने में सक्षम होंगे। इसके आगे तुम्हारा भविष्य सिर्फ राजनीति में है, अन्य किसी में नहीं। पंढरपुर त्रिंबक, काशी, हरिद्वार आदि क्षेत्रों की यात्रा से या एकादश, सोमवार इत्यादि उपवास से या शनि-माहात्म्य, शिवलीलामृत, गुरुचरित्र इत्यादि पोथियों के पारायण से तुम्हारा उद्धार नहीं होगा। तुम्हारे पूर्वज हजारों साल से ये बातें करते आ रहे हैं, फिर भी तुम्हारी शोचनीय स्थिति में तनिक भी फर्क पड़ा है क्या? तुम्हारी देह पर पहले जैसे फटे-पुराने कपड़े हैं। अधपकी रोटी के टुकड़े पर तुम्हारी उपजीविका चल रही है। ढोर-डांगर से भी अस्वच्छ तुम्हारा आज तक का रहन-सहन है। मुर्गियों की तरह तुम संक्रामक रोग की बलि बनते हो। तुम्हारे किये हुए उपवासों से तुम्हारी भूखमरी नहीं टल सकी है। तुम्हारा उद्धार का अब एक ही मार्ग है और वह है राजनीति, कानून बनाने की शक्ति। भरपेट खाना, रहने की जगह, द्रव्यार्जन के साधन प्राप्त नहीं होते; इसका कारण देवता या तकदीर दोनों ही नहीं है। तुम्हें अन्न, वस्त्र, निवास और शिक्षा देना इस देश के कानून बनाने वाली सत्ता का कार्य है और उस सत्ता का कारोबार तुम्हारी सम्मति से, तुम्हारी सहायता से ओर तुम्हारी शक्ति से चलने वाला है। इस कानून बनाने वाली शक्ति में तुम्हारा समावेश हुआ है। सारांश, सर्व सुख का आधार कानून है। इसलिए कानून बनाने की शक्ति तुम्हें पूरी तरह से हासिल करनी चाहिए। जप, तप, पूजा-अर्चना करना आदि पर से ध्यान हटाकर तुम राजनीति का आश्रय लो। तुम्हारे उद्धार का यही एकमात्र रास्ता है। तुम्हें ध्यान में रखना चाहिए कि कोई

'अपने आंदोलन का ध्येय अन्याय, जुल्म, झूठी परंपराओं और विशिष्ट खास अधिकार का निर्मूलन कर लोगों को गुलामी से मुक्त करना है। अपने निरंतर, अखंड आंदोलन की वजह से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ी है। मृत जानवरों का मांस भक्षण मत करो, फिर हम क्या खाएं यह पूछने वाले लोगों से मैं कहना चाहता हूं कि परिस्थिति में सुधार लाने के लिए पतिव्रता वेश्या के जीवन को नहीं अपनाती। सम्मान के साथ जीना सीखो। नैराश्य का युग समाप्त हो गया। नये युग का प्रारंभ हो गया है। तुम्हारे राजनीति और कानून बनाने की सत्ता में हिस्सा ले सकने की वजह से आज तुम्हारे लिए सब कुछ संभव है।'

समाज जागृत, सुशिक्षित ओर स्वाभिमानी होगा, तो ही उसकी सामर्थ्य बढ़ेगी।[2]

मार्च महीने के बीच में भारतीय संविधान का स्वरूप जाहिर करने वाली श्वेतपत्रिका ब्रिटिश सरकार ने प्रकाशित की। ब्रिटिश लोकसभा के दोनों विभागों की एक संयुक्त समिति उस पर विचार-विमर्श करने वाली थी। मोहम्मद अली जिन्ना ने कहा कि यह श्वेत पत्रिका यानी ब्रिटिश राजसत्ता का एक नियम है। सुभाष बाबू ने कहा, ''शांति को सुरंग लगाने वाली यह घटना है। डॉ. मुंजे ने उस श्वेतपत्रिका का वर्णन काला-मसौदा, इस प्रकार किया तो जयकर ने कहा कि संघ राज्य की कल्पना अब पीछे हट रही है।

इसी समय बंगाल विधान परिषद् ने पुणे-करार रद्द करने के बारे में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। बंबई के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' पत्र द्वारा प्रकाशित पत्रक में अम्बेडकर ने कहा, 'पुणे-करार बनाने के कार्य में बंगाली हिंदू नेताओं का बड़ा योगदान है। परेल और इंडियन मर्चंट्स चेम्बर में मेरे साथ बंगाली नेताओं ने चर्चा की थी। उस समय हम उसमें शरीक नहीं थे, उनका यह कहना साफ झूठ है।' पुणे-करार के समय बंगाली हिन्दुओं के प्रतिनिधि नहीं थे। इस आशय का कहना साफ झूठ है।' पूणे-करार के समय बंगाली अस्पृश्य नेताओं को संतोषजनक नहीं लग रहा था, फिर भी वह परिस्थिति स्वीकार करने के लिए मैंने उन्हें विवश किया है। बंबई, बिहार, पंजाब और उड़ीसा की अस्पृश्य जनता को पुणे-करार संतोषजनक नहीं लगता। इस तरह की स्वार्थी, मतलबी, झूठी शिकायत पर अस्पृश्य नेता बलि नहीं चढ़ेंगे'।

संयुक्त समिति से कार्य के लिए चुने गए लोगों के नाम प्रकाशित हुए। जयकर, मिर्झा, इस्माइल, आगाखान, सर अकबर हैदरी के साथ अम्बेडकर की उस समिति में नियुक्ति हुई। विलायत जाने से पहले अनेक सभाओं में अम्बेडकर ने भाषण किये। गांधी जी से यरवदा कारागृह में भेंट भी की। अम्बेडकर की कीर्ति का प्रभाव यद्यपि बढ़ रहा था, फिर भी स्पृश्य हिंदुओं के समूह में उनके बारे में जो पूर्वग्रह था, वह बिलकुल परवर्तित नहीं हुआ था। दलित वर्ग की हुई सेवा के उपलक्ष्य में महाराज सयाजी गायकवाड़ का बंबई में सत्कार होने वाला था। अम्बेडकर का नाम उस सभा के लिए स्वागत समिति द्वारा चुने हुए वक्ताओं की सूची में था। अम्बेडकर का नाम उस सभा के लिए स्वागत समिति द्वारा चुने हुए वक्ताओं की सूची में था। लेकिन कहीं पर मक्खी छींकी और उनका नाम हटा दिया गया। उनकी अस्पृश्यता वहां बाधक बनी। अम्बेडकर एक महान भारतीय नेता थे। ज्ञान के क्षेत्र में वे एक अधिकार संपन्न व्यक्ति थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री की बगल में बैठकर विचार-विर्मश करने वाले एक प्रभावी नेता के रूप में उनका नाम सभी ओर मशहूर था। परंतु भारत के कतिपय तथाकथित समाज सुधारकों को उन्हें बराबरी का स्थान देने में न्यूनता लग रही थी। पुणे-करार के बाद कुछ लोग अम्बेडकर का अभिनंदन करने वाले थे। परंतु सुविधाजनक जगह के अभाव में वह विचार स्थगित किया गया। एक कानूनी पंडित को अपने बेटे के विवाह का आमंत्रण डॉ. अम्बेडकर को देना था। लेकिन वहां भी अम्बेडकर की अस्पृश्यता बाधक बनी।[3]

अस्पृश्य वर्ग के बच्चों के लिए खोले गए छात्रावास को बाबासाहेब ने 4 अप्रैल 1933 को भेंट दी। वह छात्रावास पनवेल से ठाणे के आगाखान के बंगले में स्थानांतरित कर दिया गया था। बड़ी मुश्किल से आगाखान का बंगला अम्बेडकर ने प्राप्त किया था। वह छात्रावास पनवेल में एक ज्यू के घर में कैसे शुरू हुआ, स्पृश्य हिंदुओं ने उसके लिए जगह देने से कैसे इंकार किया, अस्पृश्य चालकों की असहायता का लाभ उठा कर उस मकान का किराया उन्होंने कैसे बढ़ाया, ये सब बातें अम्बेडकर के अपने उपदेश पर किये भाषण में विद्यार्थियों को समझा कर बतायी। कितनी अनगिनत कठिनाइयों में और अत्यंत अपमानजनक परिस्थिति में अपनी शिक्षा पूरी हुई और अब विद्यार्थियों को कैसा अच्छा मौका और सुविधा प्राप्त हुई है, इसके बारे में उन्होंने विद्यार्थियों को पूरी जानकारी दी। उन्होंने यह उपदेश किया कि, 'विद्यार्थियों को खुद की अर्हता बढ़ाने का कार्य करते समय राजनीति में हिस्सा नहीं लेना चाहिए। उन्हें आत्मनिर्भरता का पथ ढूंढ़ना चाहिए। अपने जीवन में हम आगे बढ़े बिना नहीं रहेंगे यह निश्चय कर अगर तुम व्यावहारिक जगत में प्रवेश करोगे, तो ही कुछ सफलता प्राप्त होगी।'

अगले सप्ताह वसई तहसील के सोपारा गांव में अस्पृश्य वर्ग की परिषद् के लिए डॉ. अम्बेडकर रवाना हुए। 12 अप्रैल को परेल में डॉ. अम्बेडकर और बंबई नगरपालिका की शिक्षा समिति के अध्यक्ष विनायक गणपत (वी.जी.) राव का मानसम्मान किया गया। वि.ग. राव ने अपने कार्यक्रम में अस्पृश्य वर्ग के शिक्षा कार्य में बड़ी सेवा की थी। उत्तर के रूप में भाषण करते समय डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने कहा, 'मेरा सारा जीवन विद्यार्थी के रूप में व्यतीत हो, ऐसी मेरी अभिलाषा थी। ज्ञान की भूख शांत हो इसलिए मैंने पेट की भूख को मारकर अपने ग्रंथ खरीदे। कोई प्राध्यापक की नौकरी स्वीकार कर ग्रंथ पढ़ने में सुख से समय व्यतीत करे ऐसी मेरी पहली इच्छा थी। परंतु सौभाग्य कहो या दुर्भाग्य, मुझे अस्पृश्यों के आंदोलन में हिस्सा लेना पड़ा। न पैसा, न व्यक्ति, न बुद्धिमता ऐसी इस समाज की परिस्थिति होने के कारण इस समाज का काम करना बड़ा मुश्किल है।' उसी राम कुर्ला में रावबहादुर सी.के. बोले की अध्यक्षता में अम्बेडकर को एक थैली अर्पित की गई। ■

(पॉपुलर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित धनंजय कीर की लिखी पुस्तक डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जीवन चरित से साभार)

(क्रमशः शेष अगले अंक में)

शिक्षण पद्धति में गुरु-शिष्य परम्परा

■ डॉ. प्रभु चौधरी

गुरु-शिष्य परम्परा का इतिहास अति प्राचीन है। यदि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति पर दृष्टिपात किया जाय तो यह पता चलेगा कि प्राचीन काल में ज्ञानार्जन के लिए शिष्य गुरु के पास जाते थे। गुरु के पास रहकर भिक्षा मांगकर अपना उदर भरण करते थे। गुरु अपने शिष्यों को ज्ञान के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व विकास (Personality Development) में सहायता प्रदान करते थे।

शिष्य गुरु को अपना सर्वस्व मानते थे। गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए शिष्य कहा करते थे-

गुरुब्रह्म गुरु विष्णुः
गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परमब्रह्मा
तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इस श्लोक से प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य के संबंध स्पष्ट हो जाते हैं।

गुरु के आश्रम में रहकर अपना शारीरिक एवं मानसिक विकास होने के बाद समाज में रहने योग्य बनाकर एक आदर्श नागरिक के रूप में शिष्य सामाजिक जीवन में पदार्पण करते थे। अपनी शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् शिष्य गुरुओं को कृतज्ञता के रूप में गुरु दक्षिणा देते थे। गुरु को अपना आदर्श मानकर शिष्य अपना जीवन व्यतीत करते थे। गुरु-शिष्य के संबंध पर प्रकाश डालते हुए संत कबीर ने कहा है-

गुरु धोबी सिख कपड़ा,
साबू सिरजन सार।
सुरती सिला कर धोइए
निकसे ज्योति अपार॥

अर्थात् धोबी रूपी गुरु, कपड़ा रूपी शिष्य को पत्थर रूप मस्तिष्क पर साबुन रूपी ज्ञान से धोता है जिसके कारण शिष्य ज्ञानवान बनता है। इस प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य को ज्ञानी बनाता था और शिष्य गुरु के प्रति सदैव कृतज्ञ रहता था।

शिक्षक त्यागी हों

मेरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है- 'गुरुगृह-वास'। शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती। शिष्य को बाल्यावस्था से ऐसे व्यक्ति (गुरु) के साथ रहना चाहिए, जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान हो, जिससे उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के समान रहे। हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता आया है। ज्ञानदान का भार पुनः त्यागियों के कंधों पर पड़ना चाहिए।

शिक्षा की प्राचीन कथा

भारतवर्ष की पुरानी शिक्षा प्रणाली वर्तमान प्रणाली से बिलकुल भिन्न थी। विद्यार्थियों को शुल्क नहीं देना पड़ता था। ऐसी धारणा थी कि ज्ञान का दान इतना पवित्र है कि उसे किसी मनुष्य को बेचना नहीं चाहिए। ज्ञान का दान मुक्त हस्त होकर, बिना कोई दाम लिए करना चाहिए। शिक्षकगण विद्यार्थियों को उनसे शुल्क लिए बिना ही अपने पास रखते थे; इतना ही नहीं, बहुतेरे गुरु तो अपने शिष्यों को अन्न और वस्त्र भी देते थे। इन शिक्षकों के निर्वाह के लिए धनी लोग उन्हें दान दिया करते थे और उसी से वे अपने शिष्यों का पालन-पोषण करते थे। पुराने जमाने में शिष्य गुरू के आश्रम को 'समित्पाणि' होकर (हाथ में समिधा लेकर) जाता था और गुरु उसकी योग्यता का निश्चय करने के पश्चात् उसके कटि प्रदेश में तीन लड़वाली मुंज-मेखला बांधकर उसे वेदों की शिक्षा देते थे। यह मेखला तन, मन और वचन को वश में रखने की उसकी प्रतिज्ञा की चिन्ह-स्वरूप थी।

शिक्षक के तीन विशिष्ट गुण

गुरु के संबंध में यह जान लेना आवश्यक है कि उन्हें शास्त्रों का मर्म ज्ञात हो। वैसे तो सारा संसार ही बाइबिल, वेद और कुरान पढ़ता है, पर वे तो केवल शब्दराशि हैं, धर्म की सूखी ठठरी मात्र है। जो गुरु शब्दाडम्बर के चक्कर में पड़ जाते हैं, जिनका मद शब्दों की शक्ति में बह जाता है, वे भीतर का मर्म खो बैठे हैं। जो शास्त्रों के वास्तविक मर्मज्ञ हैं, वे ही असल में सच्चे धार्मिक गुरु हैं।

गुरु के लिए दूसरी आवश्यक बात है-निष्पापता। बहुधा प्रश्न पूछा जाता है,

''हम गुरु के चरित्र और व्यक्तित्व की ओर ध्यान ही क्यों दो?'' यह ठीक नहीं है। अपने तईं आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि करने और दूसरों में उसका संचार करने का एकमात्र उपाय है-हृदय और मन की पवित्रता। गुरु को पूर्ण रूप से शुद्धचित होना चाहिए, तभी उनके शब्दों का मूल्य होगा। वास्तव में गुरु का काम ही यह है कि वे शिष्य में आध्यात्मिक शक्ति का संचार कर दे, न कि शिष्य की बुद्धिवृत्ति अथवा अन्य किसी शक्ति को उत्तेजित मात्र करें। यह स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि गुरु से शिष्य में सचमुच एक शक्ति आ रही है। अत: गुरु का शुद्धचित होना आवश्यक है।

तीसरी आवश्यक बात है उद्देश्य के संबंध में। गुरु को धन, नाम या यशसंबंधी स्वार्थसिद्धि हेतु धर्म शिक्षा नहीं देनी चाहिए। उनके कार्य तो सारी मानव जाति के प्रति विशुद्ध प्रेम से ही प्रेरित हो। आध्यात्मिक शक्ति का संचार केवल शुद्ध प्रेम के माध्यम से ही हो सकता है। किसी प्रकार का स्वार्थपूर्ण भाव, जैसे कि लाभ अथवा यश की इच्छा, तत्काल ही इस प्रेमरूपी माध्यम को नष्ट कर देगा।

शिष्य के प्रति सहानुभूति

गुरु को शिष्य की प्रवृत्ति में अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। सच्ची सहानुभूति के बिना हम अच्छी शिक्षा कभी दे सकते। 'न बुद्धिभेदं जनयेत्' किसी की श्रद्धा को डांवाडोल करने का प्रयत्न मत करो। यदि हो सके तो उसे कुछ उच्चतर भाव दो, पर देखना, उसका भाव कहीं नष्ट न कर देना। सच्चा गुरु तो वह है, जो क्षण भर में अपने आपको माना सहस्र पुरुषों के रूप में परिवर्तित कर सकता है। सच्चा गुरू वह है जो अपने को तुरन्त शिष्य की सतह तक नीचे ला सकता है और अपनी आत्मा को शिष्य की आत्मा में प्रविष्ट कर सकता है तथा शिष्य के मन द्वारा देख और समझ सकता है। ऐसा ही गुरु यथार्थ में शिक्षा दे सकता है, दूसरा नहीं।

आधुनिक शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य संबंधों में बहुत सारे परिवर्तन देखे जा सकते हैं। गुरु पद्धति करीब-करीब खत्म सी हो गई है। छात्र से आना-जाना करते हुए विद्यालयों को जाने लगे हैं। शिक्षा आधुनिक तकनीकों के कारण गुरु-शिष्य संबंधों में थोड़ी-सी औपचारिकता आ गयी है। बावजूद इसके (गुरु के प्रति आदरभाव, श्रद्धा आदि नैतिक मूल्यों तक ही सीमित रह गये हैं। यही कारण है कि स्कूली शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता है।) गुरु-शिष्य परम्परा का चलन आज के इस आधुनिक युग में ही हो रहा है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत गुरु-शिष्य संबंधों की यदि बात की जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आज के शिष्यों के साथ मित्रता भरा व्यवहार करना आवश्यक हो गया है। आज छात्र उन्हीं गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं जिन्हें वे पसंद करते हैं, या उन्हें जो अद्यतन हैं। पूर्व में छात्र पूर्णतया अध्यापकों पर निर्भर रहते थे, परन्तु आज पुस्तकों, रेडियो, दूरदर्शन, इंटरनेट आदि पर ज्ञान के भरमार भण्डार है। छात्र किसी भी विषय की जानकारी प्राप्त करने लगा है, जिसके परिणामस्वरूप गुरु की भूमिका एक मार्गदर्शक बनकर रह गयी है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति में अलग-अलग विषयों को सिखाने के लिए अलग-अलग विषय के विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है जो अध्यापक या विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है जो अध्यापक या विशेषज्ञ छात्रों की मानसिकता के अनुकूल अध्यापन करता है वहीं छात्रों के दिलों में स्थान बना सकता है। आज की तारीख में गुरुओं को चाहिए कि वे केवल अपने विषय को न समझाये बल्कि छात्रों को अपने विषय में रुचि निर्माण करने के लिए भिन्न-भिन्न विधाओं को अपनाएं। जिससे छात्र अपने विषय में प्रवीणता हासिल करें। एक सफल अध्यापक वही हो सकता है, जिसके संबंध छात्रों के साथ घनिष्ठ हो, जो छात्रों की सहायता के लिए सदैव तत्पर हो, जो छात्रों के बौद्धिक ही नहीं बल्कि शारीरिक एवं मानसिक विकास पर अधिक ध्यान देता हो और छात्र के सर्वांगीण विकास पर ध्यान देते हुए अपने गुरु होने के कर्तव्यों को पूरा करें। यदि गुरु उपरोक्त सभी बातों पर ध्यान देगा, तो अवश्य ही छात्रों के साथ उसके संबंध अच्छे होंगे।

आज के इस आधुनिक एवं वैज्ञानिक युग में गुरु-शिष्य परम्परा में औपचारिकता में प्रवेश करने लगी है। इसका श्रेय आज के अध्यापक वर्ग या गुरुओं को जाता है और गुरु-शिष्य संबंधों में उत्पन्न हो रही औपचारिकता को यदि कोई समाप्त कर सकता है तो वह भी आज के गुरु ही है। यह कोई असंभव कार्य नहीं है, छात्रों की मानसिकता के अनुरूप अध्यापन, उसके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार तथा रोचक एवं मनोरंजक पद्धति से अध्यापन करने से छात्रों की विषय के प्रति रूचि निर्माण तो होगी ही, साथ ही साथ छात्र उस अध्यापकों को अपना आदर्श मानकर चलेंगे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अध्यापक समय-समय पर स्वयं को अद्यतन बनाये, जिसके फलस्वरूप उसे छात्रों में घुलने-मिलने में आसानी होगी। तभी छात्र अध्यापक की बात सुनेंगे और अध्यापक छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास कर सकता है। आधुनिक शिक्षा पद्धति में शिष्य परम्परा मित्रता और सहानुभूति पर टिकी है। संक्षिप्त में कहा जाए तो यदि गुरु चमत्कार शिक्षा पद्धति में शिष्य परम्परा मित्रता और सहानुभूति पर टिकी ही है। संक्षिप्त में कहा जाए तो यदि गुरु चमत्कार करता है तो शिष्य उसे नमस्कार करेंगे। इसीलिए यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज गुरु-शिष्य परम्परा चमत्कार पर टिकी है। ■

(लेखक सम्पादक मंडल के सदस्य हैं)

भाषा

घातक है अपनी भाषा से आत्म निर्वासन

■ रश्मि रमानी

प्रख्यात कवि डब्ल्यू. वी. यीट्स के शब्दों में, अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा प्रणाली चलाकर, ब्रिटेन ने भारत का सबसे बड़ा नुकसान किया है, उसने भव्य लोगों की आत्माओं में हीन भावना भरकर उन्हें नकलची बना दिया है। भाषा और समाज के तादात्म्य का सबसे महत्वपूर्ण कारण है, भाषा और संस्कृति का आपस में गहरा सम्बन्ध होना। भाषा सामाजिक व्यक्ति को यथार्थ का ऐसा फिल्टर प्रदान करती है, जिससे उसे यह आभास होता है कि वह अपने आसपास के जगत को किस प्रकार देखता है और उसे क्या रूप प्रदान करता है? कोई भी समाज प्राकृतिक जगत से जो अंतरंग सम्बन्ध स्थापित करता है, वह भाषा से ही अभिव्यक्त होता है, मानवीय भाषा एक ऐसा विशिष्ट साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य उच्चतर बौद्धिक कार्य करने में सक्षम है, जिसके द्वारा यह मूर्त को अमूर्त कर सकता है और विशेष को सामान्य से जोड़ सकता है। बच्चा जन्म से जिस भाषा में अपनी माता से विचारों का संप्रेषण करता है, वह मातृभाषा होती है। मातृभाषा, भाषा का सबसे सरलतम रूप है, जिसे कोई भी बच्चा बिना प्रयास के सीख लेता है। हम अपनी विभिन्न दैनिक क्रियाओं में मातृभाषा से घिरे रहते हैं, छोटा बालक अपनी मातृभाषा में ही सोचता है, कल्पनाएं करता है, और सपने देखता है। यह जीवन की अमूल्य निधि है, क्योंकि बालक के विकास का मूलाधार मातृभाषा है, उसी के द्वारा उसके व्यक्तित्व का और संवेदनशील अनुभूतियों का विकास होता है। मनोवैज्ञानिक सिद्ध कर चुके हैं कि, मातृभाषा समस्त मानसिक क्रियाओं और मनोवेगों की अभिव्यक्ति का साधन है। समाज शास्त्री राबर्ट लैडो ने कहा है, ''भाषा का गहन संबंध, मानव अनुभूतियों तथा क्रियाओं से है, यह हमारे लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिस भाषा में हमारे पूर्वज सपने देखते और साकार करते रहे, जिसमें उन्होंने कल्पना के विराट साम्राज्य का सृजन किया, उसी की समृद्धि को हम चुपचाप छिन्न-भिन्न होता देख रहे हैं। भाषा के प्रति हमारी यह उदासीनता एक दिन भाषा को उजाड़ दे तो कोई आश्चर्य नहीं:-

'वही लड़ेगा अब भाषा का युद्ध
जो सिर्फ अपनी भाषा बोलेगा,
मालिक की भाषा का एक शब्द नहीं'

कवि रघुवीर सहाय की इन पंक्तियों में मातृभाषा से प्रेम न करने वालों और भाषा के क्षतिग्रस्त होने की स्थितियों में उसके अस्तित्व के संघर्ष को दर्शाया है, यह कितना आश्चर्यजनक है कि मनुष्य को मातृभूमि से निर्वासित किया जा सकता है, किन्तु उसे मातृभाषा से बेदखल हर्गिज नहीं किया जा सकता है, पर आज भारत में स्थिति यह हो गई है कि अंग्रेजी को बेदखल करने के बारे में सोचा तक नहीं जा सकता है। अंग्रेजी का सम्मोहन और वर्चस्व जिस गति से बढ़ रहा है, उसके चलते अंग्रेजी माध्यम की शिक्षण संस्थाएं शिक्षा का व्यवसाय कर रही हैं, टेलीविजन की भाषा खिचड़ी हो चली है। समाज की भाषा-चेतना संक्रमित हो रही है, काम चलाऊ और मिलावटी भाषा का इस्तेमाल आम हो चुका है। शब्द-सामर्थ्य की कमी का अन्दाजा तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि आजकल के युवा और बच्चे बहुत कम हिन्दी शब्दों का अर्थ जानते और प्रयोग करते हैं। उनके शब्दों में अशुद्धियां और संवादों में सीमित शब्दों का प्रयोग सामान्य बात है। अंग्रेजी की तीव्र चकाचौंध में संवेदनशीलता के कुण्ठित होने के साथ-साथ, भाषा और समाज की संकल्पनाएं, जो कि एक दूसरे को निरन्तर प्रभावित और परिवर्तित करती हैं, वे भी टूट रही हैं। मातृभाषा मनुष्य के रक्त में घुलकर बोलती है। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि मातृभाषा से आत्म-निर्वासन संभव नहीं है, किन्तु आज अपनी मातृभाषा के परिप्रेक्ष्य में यह धारणा खण्डित हो रही है, क्योंकि हमारी सामाजिकता की पहचान अपनी मातृभाषा से परे जाकर अंग्रेजी में विकास की संभावनाएं तलाश रही है। अपनी नयी पहचान बनाने की जद्दोजहद ने हमें हास्यास्पद और अधकचरा बना

भाषा सामाजिक व्यक्ति को यथार्थ का ऐसा फिल्टर प्रदान करती है, जिससे उसे यह आभास होता है कि वह अपने आसपास के जगत को किस प्रकार देखता है और उसे क्या रूप प्रदान करता है? कोई भी समाज प्राकृतिक जगत से जो अंतरंग सम्बन्ध स्थापित करता है, वह भाषा से ही अभिव्यक्त होता है,

दिया है, इस परिप्रेक्ष्य में यदि हम शिक्षा के माध्यम पर दृष्टि डालें तो हमारा साक्षात्कार एक गहरे अंतर्विरोध से होता है। देश में अंग्रेजी शिक्षा का अतिशय प्रयोग बच्चों पर एक अनावश्यक बोझ है, अंग्रेजी की अनिवार्य शिक्षा ने भारत के करोड़ों बच्चों को दिमागी तौर पर पंगु तथा अपाहिज बना दिया है, त्रिभाषा सूत्र के अनुपालन में अंग्रेजी शिक्षण अनिवार्य है, अर्थात् बच्चों पर अंग्रेजी थोप दी गई है। एक ऐसी भाषा जिसकी संरचना हमारी भाषा से भिन्न है, उसको सीखने समझने में हमारे बच्चों को अतिरिक्त प्रयास करना पड़ रहा है। भाषा का अध्ययन मात्र भाषा सीखना नहीं उस भाषा की संस्कृति और साहित्य का परिचय प्राप्त करना भी है, अंग्रेजी भाषा की पूर्ण जानकारी के अभाव में, बच्चों की अभिव्यक्ति की क्षमता तो प्रभावित हो ही रही है, उसकी कल्पना का संसार भी विखंडन से अछूता नहीं रहा है। अंग्रेजी की कक्षाओं में बच्चों के मौन तनावग्रस्त चेहरे इसका प्रमाण है। मातृभाषा की कक्षा में बच्चों की मुखरता और श्रेष्ठ अभिव्यक्ति से पता चलता है कि बच्चे अंग्रेजी में न तो अपने मनोभाव और अनुभूतियों को स्पष्टता से व्यक्त कर सकते हैं, न ही अपनी कल्पना का संसार सृजित कर सकते हैं। समस्या सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं है, जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने मुंह से निकले रेशम के तार में इतना मोहान्ध हो जाता है कि वह उस तार को अपने चारों ओर लपेटने लगता है, और अंततः उसी में बंधकर मर जाता है। उसी प्रकार हम भी वैसी ही स्थिति में फंसते जा रहे हैं। देश में चल रहे वैचारिक संकट और सामाजिक संवादहीनता का एक बहुत बड़ा कारण है, हमारे छात्रों का अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करना। विदेशी चिन्तन पद्धति, विदेशी आचार-विचार और संस्कृति में रंगे हमारे छात्र, भारत के स्वर्णिम अतीत, गौरवशाली और समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं और विरासत से कटते जा रहे हैं। लॉर्ड मैकाले ने कहा था, 'भारत में मेरा अंग्रेजी शिक्षा देने का यह उद्देश्य है कि जो भारतीय विद्यार्थी स्कूलों और कॉलेजों से पढ़कर निकलें, वे शक्ल-सूरत से तो भारतीय रहें, परन्तु बौद्धिक दृष्टि से अंग्रेजी तथा अंग्रेजियत के भवन बन जाएं, मैकाले की भविष्यवाणी सच हुई। हमारे विद्यार्थी अंग्रेजी में प्रवीणता प्राप्त करने के लिये, अपनी शक्ति और प्रतिभा का अपव्यय कर रहे हैं, अंग्रेजी ने उनमें हीन भावना भर दी है। अधकचरे ज्ञान के कारण उनमें पांडित्य और गहराई का अभाव है।

लॉर्ड मैकाले ने कहा था, 'भारत में मेरा अंग्रेजी शिक्षा देने का यह उद्देश्य है कि जो भारतीय विद्यार्थी स्कूलों और कॉलेजों से पढ़कर निकलें, वे शक्ल-सूरत से तो भारतीय विद्यार्थी स्कूलों और कॉलेजों से पढ़कर निकलें, वे शक्ल-सूरत से तो भारतीय रहें, परन्तु बौद्धिक दृष्टि से अंग्रेजी तथा अंग्रेजियत के भवन बन जाएं, मैकाले की भविष्यवाणी सच हुई। हमारे विद्यार्थी अंग्रेजी में प्रवीणता प्राप्त करने के लिये, अपनी शक्ति और प्रतिभा का अपव्यय कर रहे हैं, अंग्रेजी ने उनमें हीन भावना भर दी है। अधकचरे ज्ञान के कारण उनमें पांडित्य और गहराई का अभाव है।

कान्वेण्ट और पब्लिक स्कूलों ने इस देश में एक अपसंस्कृति को जन्म दिया है। जिससे इस देश में एक फूहड़, खोखला और नकलची वर्ग पैदा हो रहा है, जो अंग्रेजी की नकल करने में अपना गौरव समझता है। अंग्रेजी के बल पर ऊंचे पदों को प्राप्त करके यह वर्ग समृद्ध जीवन व्यतीत करता है, जबकि हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा माध्यमों से शिक्षा प्राप्त छात्र छोटी-मोटी नौकरी प्राप्त कर पाते हैं और कुण्ठा तथा दरिद्रता का जीवन जीते हैं। यही नहीं समाज में बढ़ रही आर्थिक विषमता का एक मुख्य कारण शिक्षा की असमानता भी है, देश में प्रतिभाओं की कमी नहीं है, पर अंग्रेजी ज्ञान के अभाव में ये प्रतिभाएं गुमनाम है। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि पब्लिक स्कूलों से पढ़कर निकले हुए छात्र, प्रसिद्ध दार्शनिक, चिन्तक, विचारक और लेखक या विज्ञान अनुसंधानकर्ता बन पाते हैं, कारण स्पष्ट है कि अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त छात्र बहिर्मुखी रहते हैं इसलिये शीर्ष पर पहुंचने के मार्ग वे सरलता से ढूंढ लेते हैं, परन्तु भारतीय भाषाओं में शिक्षा प्राप्त छात्र अंतर्मुखी होते हैं, इसीलिए चिन्तन के क्षेत्र में उनकी पकड़ गहरी रहती है। मातृभाषा व्यक्ति की शैक्षिक अस्मिता को पुष्ट करती है, उसे समाज से जोड़ती है, समाज में आज जो सांस्कृतिक प्रदूषण फैल रहा है, जो अपसंस्कृति पनप रही है, उसका कारण अपने को विदेशी संस्कृति में रंगते विद्यार्थी भी हैं, भाषा के इस खतरनाक विस्तारवाद को फ्रान्स और जापान ने समय रहते समझा और वहां अंग्रेजी के प्रभाव को रोकने के लिये सामाजिक कानून बनाये गए हैं। ■

विधि की शिक्षा हिन्दी से एवं न्यायालय में हिन्दी

■ वन्दना सक्सेना

भाषा संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। भाषा के माध्यम से ही हम अपनी अंतर्मुखी अनुभूतियों एवं योग्यताओं को बाहरी जगत में प्रकट कर सकते हैं। अर्थात् हम अपने आचार-विचार, भाव, अभिव्यक्ति आदि भाषा का संप्रेषण द्वारा अच्छी तरह व्यक्त कर सकते हैं और यदि भाषा भी अपनी हो तो हमें अपने आप को सही व्यक्त करने में और अधिक आसानी होती है। मसलन यदि हम अच्छे विचार अंग्रेजी में व्यक्त करना चाहें तो हम एक सीमा से अधिक स्वतंत्र नहीं हो सकते किन्तु वही विचार हम अपनी भाषा यानि कि हिन्दी में व्यक्त करें तो हम अधिक अच्छी तरह एवं स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त कर सकते हैं क्योंकि हिन्दी हमारी संवाद की प्रमुख भाषा है। इसी तरह शिक्षा का पाठ्यक्रम भी हम हिन्दी में अच्छी तरह व्यक्त कर सकते हैं, न कि अंग्रेजी में। बशर्ते हम अपनी हीन मानसिकता से उबर पाये। बहुतायत की यह गलत धारणा है कि अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ज्यादा योग्य होता है और अधिक अच्छी नौकरी पाता है, किन्तु आज यह धारणा निर्मूल हो चुकी है क्योंकि हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित व्यक्ति से अधिक अच्छी नौकरियों पर चयन पा चुके हैं एवं उनसे अधिक योग्य व सक्षम साबित हुए हैं। अतः हिन्दी माध्यम से शिक्षा लेना हीन नहीं वरन् गौरव है। साथ ही हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना आज चिकित्सा, इंजीनियरिंग, साइंस, आर्ट्स, विधि किसी भी क्षेत्र में दुष्कर नहीं है क्योंकि हर क्षेत्र में हिन्दी में पुस्तकें एवं शब्दावलियां उपलब्ध है (सन्दर्भ-विधि

साहित्य समाचार जनवरी से मार्च 92 एवं प्रतियोगिता दर्पण मासिक जून 1988)

विधि शिक्षा-स्वरूप एवं महत्त्व

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है एवं समाज में रहता है। इस समाज में रहने के लिए उसे नियम-कायदे एवं कानून का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि सामान्य नागरिक का विधि से किसी न किसी प्रकार का वास्ता पड़ता ही रहता है। अतः विधि शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि विधि छात्रों के अतिरिक्त अन्य सामान्य नागरिकों को भी विधि का सामान्य ज्ञान होना चाहिए ताकि वे जिम्मेदार एवं जागरूक नागरिक की हैसियत से राष्ट्र निर्माण में सहायक बन सकें। अर्थात् विधि शिक्षा में 'एवरी मेन्स लॉ' जैसी सरल, सुबोध पुस्तकों की आवश्यकता आज गौण हो गयी है। अतः विधि की शिक्षा का स्वरूप, संकाय विशेष छात्रों तक सीमित न होकर आम आदमी तक पहुंचना समय की आवश्यकता है। इसके लिए प्रारंभिक शिक्षा स्तर से ही हिन्दी, अंग्रेजी, सामाजिक अध्ययन, भूगोल आदि के साथ ही आम बोलचाल की भाषा में मार्गदर्शक किस्म की विधि शिक्षा का निसंदेह स्वागतेय, प्रासंगिक एवं समयानुकूल होगा। इससे छात्र अन्य विषयों के अलावा विधि का भी मोटा ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम होगा एवं विधि संबंधी अपनी समस्याओं को सुलझाने में योग्य बन सकेगा। छोटी-मोटी समस्याओं के लिए वकील-अदालत के लम्बे फेर से बच सकेगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय समाज स्थिर एवं शांत था, किन्तु आज परिस्थितियां काफी भिन्न हैं। निसन्देह गांधी का रामराज्य का स्वप्न आज डकैती, आगजनी, गुंडागर्दी, आतंक एवं असुरक्षा की समस्या से चूर-चूर हो चुका है। निरन्तर सामाजिक, नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का ह्रास स्पष्ट परिलक्षित है एवं समाज असुरक्षा की भावना से ग्रस्त है। हर खासो-आम आज अपनी जान-माल की रक्षा में असमर्थ है। सारे कानून नियम और आदेश आज फेल हो चुके हैं, ऐसे में विधि शिक्षा का महत्व और बढ़ गया है। अतः सभी विधि का सामान्य ज्ञान सभी के लिए आवश्यक है एवं

आम आदमी का अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक होना नितांत गौण है और यह तभी संभव है जबकि विधि शिक्षा संकाय विशेष के सीमित दायरे से हर एक के लिए उपलब्ध हो, अर्थात् 'एवरी मेन्स लॉ' फॉर एवरी मेन (सन्दर्भ-विधि साहित्य समाचार जनवरी से मार्च 92)।

भारत में विधि शिक्षा का इतिहास

भारत में विधि शिक्षा का इतिहास स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजों के शासनकाल से अब तक निरंतर सफलता की ओर चलता आ रहा है। यह बात और है कि प्रारंभिक अवस्था में विधि एवं विधान का माध्यम फारसी रहा। फिर 1937 आते-आते उर्दू हो गया। हिन्दी का तो विधि शिक्षा में स्थान न के बराबर था। सन् 1897 में नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सुप्रयासों के परिणामस्वरूप 1901 ई. में देवनागरी को विधि शिक्षा में स्थान मिला। अर्थात् भारत में स्वतंत्रता पूर्व विधि शिक्षा का माध्यम कमोबेश इंग्लिश ही तक सीमित था क्योंकि अधिकांश पुस्तकें अंग्रेजी में ही उपलब्ध थी एवं इंग्लैंड में पनपी विधि संकल्पनाओं को फारसी, उर्दू एवं हिन्दी में अभिव्यक्ति देने योग्य शब्दावलियों का सर्वथा अभाव था। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से विधि शिक्षा के इतिहास में हिन्दी का पदार्पण हुआ एवं 8 अक्टूबर 1947 से उत्तर प्रदेश में विधि एवं विधान की भाषा हिन्दी देवनागरी लिपि में अंगीकार कर ली गयी। फलस्वरूप हिन्दी में विधि शब्दावलियों एवं पुस्तकों के अनुवाद की पहल शुरू हो गयी। सन् 1948 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा 'प्रशासन शब्दकोश' निकाला गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इस बात पर जोर दिया गया कि विधि शिक्षा विषयक पारिभाषिक शब्दावलियों की कमी दूर की जाए। परिणामस्वरूप 17 सितम्बर 1949 को 'भारतीय संविधान का हिन्दी में अनुवाद कराने की रूपरेखा रखी गयी। 'डॉ. राजेन्द्र प्रसाद' (भारत के प्रथम राष्ट्रपति) के प्रयासों से संविधान का हिन्दी अनुवाद हुआ। इसके साथ ही हिन्दी में विधि विषयक मानक एवं सर्वस्वीकार्य शब्दावली का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् भारत सरकार के विधि एवं विधायी कार्य मंत्रालय द्वारा विधि की अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद एवं 'विधि शब्दावली' का निर्माण तथा विधि में हिन्दी में लिखी पुस्तकों के प्रकाशन से विधि शिक्षा क्षेत्र में हलचल सी हो गयी एवं जनसाधारण में भी विधि शिक्षा प्राप्त करने की चाहत उत्पन्न होने लगी। प्राचीनकाल में जहां विधि शिक्षा हेतु अंग्रेजी पुस्तकों के लिए इंग्लैंड एवं अमेरिका का मुंह ताकना पड़ता था, अब भारत में ही विधि शिक्षा अपनी भाषा में ही उपलब्ध है। 'सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद' एवं 'आगरा लॉ सीरीज' द्वारा प्रकाशित हिन्दी एवं अंग्रेजी पुस्तकों ने विधि शिक्षा जगत में क्रांति मचा दी एवं छात्रों को सरल, सहज, सुबोध भाषा में विधि शिक्षा का पाठ्यक्रम उपलब्ध कराया है। भारत में प्राचीन विधि शिक्षा इतिहास स्वर्णिम नहीं था, किन्तु आज उसका भविष्य गौरवमय होने पर अग्रसर है (सन्दर्भ - विधि साहित्य समाचार पत्रिका जनवरी से मार्च 92)

विधि शिक्षा का माध्यम - अंग्रेजी-हिन्दी : ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में

भारत में स्वतंत्रता से पहले विधि शिक्षा में हिन्दी का प्रयोग अत्यन्त सीमित था। फारसी शासकों ने विधि में फारसी का प्रयोग किया। इसके पश्चात् अंग्रेज शासकों के सामने विधि क्षेत्र में फारसी को अपनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। किन्तु सन् 1937 से उन्होंने उर्दू का विधि क्षेत्र में माध्यम के रूप में प्रयोग प्रारंभ कर दिया क्योंकि अंग्रेजी शासनकाल में हिन्दी में विधि शब्दावलियों का नितांत अभाव था। फलस्वरूप वे इंग्लैंड में पनपी विधि संकल्पनाओं को हिन्दी माध्यम से व्यक्त करने में सर्वथा अक्षम थे। अत: विधि शिक्षा एवं विधान क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग नाम मात्र भी नहीं था। इस समस्या को दूर करने हेतु अंग्रेजी की विधि शब्दावली का उर्दू में अनुवाद किया गया। इस अनुवाद की लिपि फारसी थी किन्तु बाद में अनुवादों की लिपि देवनागरी कर दी गई। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के प्रयत्नों से 1901 ई. से विधि में देवनागरी लिपि के प्रयोग की अनुमति प्राप्त हो सकी (सन्दर्भ-विधि साहित्य समाचार पत्रिका जनवरी से मार्च 92)।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विधि शिक्षा में हिन्दी के प्रयोग की ओर ध्यान किया गया। 8 अक्टूबर 1947 को उत्तर प्रदेश में विधान की भाषा के रूप में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को अंगीकार किया गया। इस तरह विधि क्षेत्र में हिन्दी का प्रवेश हुआ। इसके पश्चात् विधि में उपलब्ध किताबों का हिन्दी अनुवाद होने एवं हिन्दी में विधि शब्दावलियों के बनने से हिन्दी माध्यम से विधि शिक्षा का मार्ग खुल गया। भारत सरकार के विधि विभाग द्वारा भी द्विभाषी विधि पुस्तकें एवं हिन्दी भाषा में पुस्तकों का अनुवाद कराया गया। फलस्वरूप एकमात्र अंग्रेजी में उपलब्ध पुस्तकों का विकल्प मिल गया। अत: विधि शिक्षा में एकमात्र अंग्रेजी माध्यम का एकछत्र राज्य का बहाना नहीं रहा। वर्तमान में विधि की करीब अनेकों अंग्रेजी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद एवं हिन्दी में लिखी पुस्तकें उपलब्ध हैं। अत: विधि शिक्षा हिन्दी माध्यम से प्राप्त करने में कोई अन्य परेशानी नहीं है, सिर्फ हमारी गुलामी मानसिकता के सिवाय। आज विधि में उच्च शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी बन रही है। अनेकों छात्र हिन्दी माध्यम से विधि में पीएच.डी. जैसी उच्च डिग्री भी हासिल करने में सफल हो चुके हैं। प्रसिद्ध विधिवेत्ता एवं विद्वान 'डॉ. गुलाब चन्द कासलीवाल' के नेतृत्व में कई छात्र हिन्दी में पीएच.डी. की डिग्री हासिल कर चुके हैं, जो स्तुत्य है। अत: वह दिन दूर नहीं जब विधि शिक्षा प्रारंभिक स्तर से उच्च स्तर तक हिन्दी में ही हासिल करना गौरवमय होगा।

वर्तमान में विधि शिक्षा का माध्यम हिन्दी-क्यों? कैसे? वर्तमान स्थिति एवं

भविष्य की आवश्यकता, समस्याएं एवं संभावनाएं

वर्तमान में विधि शिक्षा का माध्यम हिन्दी क्यों और कैसे हो, बात महत्वपूर्ण है। प्रमुख मुद्दा यह है कि हर राष्ट्र अपनी शिक्षा का माध्यम अपनी संवाद वाली भाषा को रखा हुआ है। अमेरिका, इंग्लैंड में अंग्रेजी, फ्रांस में फ्रेंच, रूस में रशियन, चीन में चीनी, जर्मनी में जर्मन शिक्षा का माध्यम है। शर्मनाक स्थिति है कि राजभाषा बनने के बाद भी हिन्दी हमेशा शिक्षा के माध्यम में पूरी तरह स्थापित नहीं हो पायी है। कारण वही हीन मानसिकता या हमारी दिमागी अंग्रेजियत की गुलामी। अर्थात् अंग्रेज चले गए अंग्रेजी छोड़ गए। मानसिक रूप से हम आज भी परतंत्र हैं, इसीलिए अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना गौरव एवं हिन्दी माध्यम से शिक्षा लेना हीन समझते हैं। किसी भी राष्ट्र में शिक्षा का माध्यम परायी भाषा नहीं है, फिर हमारे भारत में ही पराई भाषा में शिक्षा क्यों हो। अतः आवश्यक है कि हम भी हमारी राष्ट्रभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनायें और कोरी दिमागी गुलामी से बाहर निकलें।

आज विधि शिक्षा का माध्यम पूरी तरह हिन्दी नहीं हो पाया है, क्योंकि लोगों का मानना है कि विधि की हिन्दी में अनुदित पुस्तकों एवं विधि शब्दावलियों में प्रयुक्त शब्द क्लिष्ट है। इसके अलावा यह भी शिकायत आम है कि विधि शिक्षा हिन्दी माध्यम से प्राप्त करने में पारिभाषिक शब्दों या तकनीकी शब्दों के अर्थ समझने में कठिनाई होती है। लेकिन इस समस्या का समाधान है कि पारिभाषिक शब्दों से छात्र एवं शिक्षक अपरिचित रहता है, इसलिए वे शब्द उसे कठिन लगते हैं। वास्तविकता यह है कि ये शब्द सम्यक प्रयोग में आने से स्वतः सरल लगते हैं। अतः तकनीकी शब्दों के अर्थ समझने और उनके प्रयोग की आवश्यकता समझने हेतु सचेत रहना आवश्यक है क्योंकि विधि शब्दावलियों के निर्माण का मूलाधार संस्कृत है, अतः शब्दों में क्लिष्टता आना सहज स्वाभाविक है। अतः विधि छात्रों को पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। चाहे उनके अध्ययन का माध्यम हिन्दी हो या अंग्रेजी। भाषा एवं शब्द व्यवहार में आने पर सरल बनते जाते हैं। अतः यह बात खरी नहीं उतरती क्योंकि अंग्रेजी जानने वाला भी अंग्रेजी में विधि के शब्दों को नहीं समझ सकता, कारण यह कि इसमें लैटिन के भी अनेक शब्द हैं, जैसे कि 'रेसजुड़िकेटा' (सन्दर्भ-विधि साहित्य समाचार पत्रिका जनवरी से मार्च 92)।

वर्तमान में विधि शिक्षा का माध्यम हिन्दी क्यों और कैसे हो, बात महत्वपूर्ण है। प्रमुख मुद्दा यह है कि हर राष्ट्र अपनी शिक्षा का माध्यम अपनी संवाद वाली भाषा को रखा हुआ है। अमेरिका, इंग्लैंड में अंग्रेजी, फ्रांस में फ्रेंच, रूस में रशियन, चीन में चीनी, जर्मनी में जर्मन शिक्षा का माध्यम है। शर्मनाक स्थिति है कि राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा दोनों बनने के बाद भी हिन्दी शिक्षा के माध्यम में पूरी तरह स्थापित नहीं हो पायी है। कारण वही हीन मानसिकता या हमारी दिमागी अंग्रेजियत की गुलामी।

यह सच है कि आज विधि शिक्षा में लोगों में हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने में कुछ हिचकिचाहट बाकी है, पर इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकें ताकि विधि में अंग्रेजी माध्यम का विकल्प हिन्दी ही होगी क्योंकि हिन्दी सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं सर्वश्रेष्ठ भाषा है। विधि का हिन्दी भाषा में अध्ययन करने में कोई समस्या नहीं है। बस आवश्यकता है विधि के सभी विषयों पर हिन्दी में उपलब्धिता तथा उनकी सहजता। आज हिन्दी में विधि वाङमय की कोई कमी नहीं है। कई शब्दकोष प्रकाशित हो चुके हैं। आवश्यकता एवं दायित्व यह है कि विधि शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्माता विधि को हिन्दी माध्यम से पढ़ाने हेतु ऐसा आदर्श रूप देवें ताकि सभी समस्याएं स्वतः हल हो जाएं एवं छात्रों की लगन हिन्दी माध्यम से विधि शिक्षा में स्वयं जागृत हो सकें।

हिन्दी एवं संवैधानिक प्रावधान

संविधान का अनु. 343 (1) हिन्दी को राजभाषा घोषित करता है। अतः सारे कामकाज हिन्दी में किए जाने चाहिए क्योंकि हिन्दी सरल, सहज, सुन्दर, सर्वश्रेष्ठ एवं वैज्ञानिक भाषा है। इसके अलावा हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा भी है। अतः सरकारी कामकाज के अलावा विधि एवं विधान तथा कानून निर्माण की भाषा भी एक ही होना चाहिए। साथ ही जहां तक हो सके, विधि की भाषा सरल होना चाहिए अर्थात् विधि निर्माण एक सर्वसम्मत, सरल, सहज भाषा में होना आज की महती आवश्यकता है।

अ) विधि निर्माण

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एवं हिन्दी के राजभाषा बनने के पश्चात् ही इस बात की प्रबल मांग उठी कि विधि निर्माण भी सरल, सुबोध भाषा में हो ताकि 'कानून सभी के लिए' अर्थात् 'लॉ फार एवरी मेन्स' बन सकें। अर्थात् आम आदमी की समझ तक पहुंच सके क्योंकि अंग्रेजी सिर्फ भारत में 2% लोग ही ठीक से जानते हैं। साथ ही अंग्रेजी में 'नरेशन' (Narration) की बला है, जबकि भारत की राष्ट्रभाषा होने की वजह से हिन्दी बहुतायत की सम्पर्क भाषा है एवं

हिन्दी 'नरेशन' की बला से मुक्त है। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम 8 अक्टूबर 1947 से उत्तर प्रदेश विधि एवं विधान निर्माण की भाषा हिन्दी मानी गयी। सन् 1956 में राजभाषा आयोग ने यह विचार रखा कि विधि निर्माण की भाषा सुनिश्चित, संक्षिप्त और सुस्पष्ट होनी चाहिए। 1960 ई. में तत्कालीन गृहमंत्री पं. गोविन्द वल्लभ पंत की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग 1956 के प्रतिवेदन पर विचारार्थ संविधान के अनुच्छेद 344 के अधीन एक संसदीय समिति का गठन किया। समिति की राय के मुताबिक 27 अप्रैल, 1960 को विधि निर्माण में हिन्दी के प्रयोग के लिए राष्ट्रपति ने आवश्यक कार्यवाही करने हेतु आदेश दिए। इसके अनु. 13 के अनुसार मानक विधि शब्दकोष तैयार करने, राज्य विधान निर्माण करने संबंधी ग्रंथ, अधिनियम, विधि शब्दावली तैयार करने की योजना जारी की गयी। विधि मंत्रालय भारत सरकार की राय से 1961 में राजभाषा (विधायी) आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग को विधि निर्माण राजभाषा में तैयार करवाने हेतु समुचित प्रामाणिक विधि शब्दावलियों आदि मुहैया कराने हेतु दायित्व सौंपा गया। इसके अतिरिक्त संविधान का हिन्दी अनुवाद भी किया गया। इस तरह राजभाषा में विधि निर्माण का सिलसिला जारी है। कानून और न्याय शासन में समस्त देश की एकता भारतीय संवैधानिक संगठन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अतः विधि निर्माण की भाषा हिन्दी होना राष्ट्र एवं जनहित में आवश्यक है (सन्दर्भ-विधि साहित्य समाचार पत्रिका जनवरी से मार्च 92)।

ब) न्यायालयीन निर्णय

न्यायालयीन निर्णयों आदि में अंग्रेजी शासन पूर्व अवश्य फारसी-उर्दू का प्रयोग होता था किन्तु 1600 ई. में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने के बाद प्रिवी कौंसिल आदि में निर्णय आदि में अंग्रेजी का स्थान प्रमुख था। इस तरह अंग्रेजों के शासनकाल में न्यायालयीन निर्णय में अंग्रेजी का एकछत्र राज्य था। कारण यह था कि इंग्लैंड में बनी विधि संकल्पनाओं एवं प्रिवी कौंसिल के लिए संदर्भ ग्रंथ, शब्दावलियों, निर्णय सार आदि अंग्रेजी के अलावा अन्य किसी भाषा में उपलब्ध नहीं थे। अतः न्यायालयीन निर्णय आदि अंग्रेजी में ही सुनाए जाते थे। लेकिन अंग्रेजी में दिए न्यायालयीन निर्णय न तो न्याय की गुहार करने वाले को समझ आते थे न गरीब, मध्य वर्गीय आम लोगों को क्योंकि आम जनता की पहुंच निर्णय में लिखी अंग्रेजी से कोसों दूर थी। अतः न्यायालयीन निर्णयों के लिए ऐसी भाषा की चर्चा उठने लगी, जो सर्वसामान्य की समझ में सहजता से आने लगे। अर्थात् न्यायालय में दिए जाने वाले निर्णय सामान्य जनता की समझ एवं पढ़ने में आ सकें। इस दृष्टि से हिन्दी ही सुगम समझी गयी क्योंकि हिन्दी सहज, सरल एवं सर्वसाधारण की भाषा है।

अतः न्यायालय में हिन्दी के प्रयोग की मांग उठी, किन्तु राजभाषा अर्थात् सरकारी कामकाज की भाषा बनने के बाद भी न्यायालयीन कार्यकलापों, निर्णयों में आज भी अंग्रेजी का वर्चस्व कायम है। कारण यह बताया जाता है कि विधि निर्णयों को हिन्दी में देने में कई दिक्कतें आती हैं, जिन में हिन्दी में अच्छी विधि शब्दावलियों का अभाव एवं प्रिवी कौंसिल आदि की पुरानी नजीरों और पुराने निर्णयों पर हिन्दी में पुस्तकें, निर्देशों आदि की बहुत कमी है। लेकिन आज विधि शब्दावली का निर्माण हो चुका है, हिन्दी में कई अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद एवं हिन्दी में लिखी पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। विधि साहित्य प्रकाशन उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय निर्णय पत्रिकाएं भी प्रकाशित करता है। लेकिन न्यायालयों में इन सभी हिन्दी में उपलब्ध सामग्री का प्रयोग आज भी समुचित नहीं होता। अतः यह बात अब समझ से बाहर नहीं है, क्योंकि न्यायालयीन निर्णयों में हिन्दी का प्रयोग करने में गौरव समझा जाए तो वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी न्यायालय की भाषा होगी क्योंकि आज विधि स्नातक वकील, जज आदि हिन्दी माध्यम से पढ़े हुए उपलब्ध हैं। अतः उन्हें हिन्दी में काम करने में दिक्कत नहीं होगी। उच्च न्यायालयों में भी कई न्यायमूर्ति हिन्दी में निर्णय लिखते हैं एवं उन्हें अनुवादक भी उपलब्ध हैं। राजस्थान के सभी अधीनस्थ न्यायालयों में हिन्दी में अबाध गति से कार्य चल रहा है (सन्दर्भ-विधि साहित्य समाचार पत्रिका जनवरी से मार्च 92)

स) सरकारी कार्यालयीन कार्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व अंग्रेजी शासनकाल में सरकारी कार्यालयीन कार्य की भाषा सामान्यतः अंग्रेजी ही रही। इसके पूर्व मुगलों के दरबार में कामकाज की भाषा के रूप में उर्दू, फारसी का चलन था। अर्थात् मुगलों के दरबार एवं अंग्रेजों के शासन में कार्यालयीन कार्य की भाषा के रूप में हिन्दी का चलन नाम मात्र ही था। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी को कार्यालयीन कार्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की पुरजोर कोशिश जारी हो गयी। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनु. 343(1) में हिन्दी को 'राजभाषा' अर्थात् सरकारी कार्यालयीन कामकाज की भाषा घोषित किया गया, जिसका सीधा अर्थ है कि भारत के समस्त कार्यालयों में सरकारी काम की भाषा हिन्दी होगी।

किन्तु खेद है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 67 वर्ष (आधी शताब्दी से अधिक) के बाद भी सरकारी काम की भाषा अंग्रेजी बनी हुई है। लेकिन आज सरकारी कामकाज की भाषा 'हिन्दी' को पूरी तरह स्थापित करने की मांग पुनः जीवित हो उठी है। इस मांग से न्यायालय भी अछूते नहीं रहे हैं। विधि एवं विधान की भाषा तथा न्यायालयों की कामकाज की भाषा हिन्दी को बनाने की पुरजोर मुहिम चालू है ताकि न्यायालय से प्राप्त न्याय आम जनता को समझ आ सके। न्यायालय में कार्यालयीन भाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार-प्रसार जारी है। जिला न्यायालयों के अलावा उच्च न्यायालय के जज भी हिन्दी में निर्णय लिखते हैं।

इस दिशा में राजस्थान के सभी अधीनस्थ न्यायालयों में सरकारी कार्यालयीन कार्य भाषा के रूप में हिन्दी, अंग्रेजी की जगह ले रही है। माननीय न्यायमूर्ति रणवीर सहाय वर्मा, मुख्य न्यायमूर्ति श्री वेदप्रकाश त्यागी, श्रीमती कामता भटनागर आदि का योगदान हिन्दी को प्रतिष्ठित करने में सराहनीय रहा है। 'मुख्य न्यायमूर्ति श्री वेदप्रकाश त्यागी' ने अपने कार्यकाल में राजस्थान के सभी अधीनस्थ न्यायालयों में सरकारी कार्यालयीन कार्य भाषा के रूप में हिन्दी को अनिवार्य कर दिया था। अतः अब वहां आसानी से हिन्दी में कार्य चल रहा है। फिर कोई भी कार्य करने में प्रारंभ में तो कठिनाई आती है, पर प्रचलन में आने पर वे स्वतः दूर हो जाती है, जैसे कि इंग्लैंड में जब राजकाज तथा न्यायालयों में 'लैटिन भाषा' का वर्चस्व था, तब प्रारंभ में अंग्रेजी को लैटिन का स्थान लेने में अत्यन्त कठिनाई हुई थी। लेकिन दृढ़ इच्छाशक्ति द्वारा 'लैटिन' की जगह अंग्रेजी स्थापित हो गयी। इसी तरह यदि दृढ़ इच्छाशक्ति से अमल किया जाए तो सरकारी कार्यालयीन कार्य की भाषा अंग्रेजी न होकर हिन्दी ही होगी क्योंकि निजी भाषा के अभाव में देश की प्रगति संभव नहीं है (सन्दर्भ-विधि साहित्य समाचार पत्रिका जनवरी से मार्च 1990)।

अधिवक्तागणों की समस्याएं

जहां तक न्यायालयों में हिन्दी भाषा में वकालत करने का प्रश्न है, तो अधिवक्तागण इस बात की दुहाई देते हैं कि पुस्तकें, नियम, अधिनियम, उच्च एवं उच्चतम न्यायालय के निर्णय आदि हिन्दी में उपलब्ध नहीं होते। जबकि अंग्रेजी में सभी सामग्री सहजता से उपलब्ध हो जाती है। बहुत से अधिवक्ता अंग्रेजी माध्यम से स्नातक होने की वजह से हिन्दी में बहस करने में हिचकते हैं। इसके अलावा अधिवक्तागणों की आम शिकायत यह है कि न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग अत्यन्त सीमित मात्रा में होता है एवं जज आदि अपने निर्णय अंग्रेजी में ही लिखते हैं। लेकिन अधिवक्तागणों की यह शिकायत आज की बदलती परिस्थितियों पर खरी नहीं उतरती क्योंकि नए विधि स्नातकों का माध्यम अधिकतर हिन्दी होता है, अतः उन्हें हिन्दी में काम करने में खास कठिनाई नहीं होनी चाहिए। आज विधि में हिन्दी में लिखी पुस्तकें नियम, अधिनियम भी उपलब्ध हैं। विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा सभी अधिनियमों के द्विभाषी संस्करण जारी किए जा चुके हैं। संविधान का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है। अनेकों हिन्दी में उत्कृष्ट पुस्तकें भी छप चुकी हैं। उच्च एवं उच्चतम न्यायालय निर्णय सार भी निकलते रहते हैं। अतः अधिवक्तागणों को हिन्दी में काम करने हेतु अधिकांश सामग्री आज उपलब्ध है।

जहां तक जजों के हिन्दी में निर्णय देने का प्रश्न है तो यह उल्लेखनीय है कि आज उच्च न्यायालयों में भी कई न्यायमूर्ति हिन्दी में निर्णय लिखते हैं (सन्दर्भ विधि साहित्य समाचार जनवरी से मार्च 90)। साथ ही न्यायालयों में भी हिन्दी का प्रयोग बढ़ रहा है। आज राजस्थान के सभी अधीनस्थ न्यायालयों में पूरा काम हिन्दी में होता है।

वस्तुतः आज अधिवक्तागणों के समक्ष हिन्दी में काम करने में कोई समस्या नहीं है। न ही यह बात है कि उन्हें हिन्दी नहीं आती। वास्तविकता यह है कि आज 90% अधिवक्ताओं को अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। इसके बावजूद भी वे झूठी शान की खातिर अंग्रेजी में काम करते हैं। यह उनकी नितांत खोखली हीन भावना एवं मानसिक गुलामी ही है। यदि वह अपनी हीन मानसिकता से उबर कर यह संकल्प करें कि उसे सिर्फ हिन्दी ही में काम करना है, तो कोई कठिनाई नहीं रोक सकती। वैसे भी निम्न तबके एवं मध्यम वर्गीय लोग ही न्याय के लिए ज्यादातर वकीलों के पास आते हैं और उन्हें अंग्रेजी का ज्ञान बहुत कम होता है। ऐसे में उन्हें जो निर्णय अंग्रेजी में प्राप्त होता है वह उनके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' होता है। यदि अधिवक्ता हिन्दी में उनका मुकदमा लड़ें एवं न्याय भी हिन्दी में मिले तो वे ठीक से अपना मुकदमा एवं न्याय समझ सकेंगे। अधिवक्ता जनता एवं न्यायालय के बीच न्याय तक पहुंचाने वाला सेतु है। आम जनता बड़ी उम्मीदों से अधिवक्ता से न्याय पाने की गुहार करती है। यही गुहार अधिवक्ता जज तक पहुंचाता है। जब यह गुहार वह अपनी भाषा में व्यक्त करेगा तो अच्छी तरह व्यक्त कर सकेगा अन्यथा अपने अल्प अंग्रेजी ज्ञान से तो वह सीमित ही विचार व्यक्त कर पायेगा। आज जब हिन्दी राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा है, तो उसका सम्मान सिर्फ कागजों पर ही नहीं बढ़ाना है, वरन् उसको अपनाकर, उसमें काम कर उसे गौरव दिलाना है। इस भावना को हर अधिवक्ता को अपने अंदर जागृत करना है, तभी देश में न्याय सर्वसाधारण के लिए आसानी से मुहैया होगा। ■

समग्र संघर्ष की महाकाव्यात्मक गाथा

■ गोपाल प्रधान

डॉ. तुलसी राम की आत्मकथा ने हिन्दी साहित्य को गरिमा प्रदान की है। उसने हिन्दी साहित्य के परंपरा के एक विशेष पहलू को इस आधुनिक समय में सच साबित किया है। साहित्येतिहास की यह एक गुत्थी है कि भारतीय साहित्य की अन्य भाषाओं में जो प्रवृत्तियां पहले प्रकट होती हैं वे हिन्दी में देर से आने के बावजूद उस प्रवृत्ति की सर्वाधिक परिपक्व अभिव्यक्ति बन जाने वाली रचनाओं के जरिए प्रकट होती है। इतिहास में ऐसा भक्ति आंदोलन के समय हुआ जब दक्षिण भारत में पैदा होने वाली वैष्णव भक्ति की धारा हिन्दी प्रदेश में आई तो पूरब से आने वाली शक्ति धारा और पश्चिमोत्तर से आई सूफी ध ारा के साथ मिलकर ऐसे सृजनात्मक विस्फोट के रूप में प्रकट हुई कि शायद अन्य किसी भाषा में उसका ऐसा रूप न दिखाई पड़ा होगा। इसी तरह उपन्यास विधा भी हिन्दी में देर से आई लेकिन उसे जैसी परिपक्वता हिन्दी में मिली वैसी किसी अन्य भाषा में न मिली होगी। ऐसी विशिष्टता का तीसरा उदाहरण नक्सलबाड़ी के साहित्यिक प्रभाव का है। अन्य भाषाओं के मुकाबले हिन्दी में यह अधिक मूलगामी तेवर के साथ सामने आया। इसी कड़ी में दलित आत्मकथा लेखन की गतिकी में डॉ. तुलसी राम की आत्मकथा है। हिन्दी के अपने प्रसंग में एक और बात कहना जरूरी है। हिन्दी में लिखी ज्यादातर दलित आत्मकथाओं के लेखन से पश्चिमी उत्तर प्रदेश का दलित सामाजिक जीवन उजागर होता है। उनमें लेखक मध्यमवर्गीय हैसियत हासिल कर लेता है और स्त्रियों के प्रति उसका पितृसत्तात्मक नजरिया दर्ज हुआ है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आत्मकथा 'जूठन' के लेखक का जीवन ज्यादातर महाराष्ट्र में बीता है। तुलसी राम की आत्मकथाओं के जरिए पूर्वी उत्तर प्रदेश का दलित सामाजिक जीवन हिन्दी दलित लेखन के केन्द्र में आ गया हैं।

'मणिकर्णिका' उनकी आत्मकथा का दूसरा खंड है। इस अर्थ में यह पहले खंड 'मुर्दहिया' की निरंतरता भी बनाए रखती है और एक स्वतंत्र पुस्तक की हैसियत से भी पढ़ी जा सकती है। पहले खंड में जहां वर्णन का विषय लेखक के बचपन का संसार था वहीं इस दूसरे खंड में परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआ नौजवान है। खास बात यह है कि लेखक की उम्र ही नहीं बढ़ती, बल्कि उसका अनुभव संसार भी साथ ही साथ विस्तारित होता है और यही उस युवक की परिपक्वता की प्रक्रिया है। जिस तरह रणधीर सिंह का 'आत्मवृत्त के बहाने' केवल व्यक्ति रणधीर सिंह की कहानी नहीं है वरन् उस पीढ़ी के दुनिया में दाखिले की कहानी है उसी तरह आत्मकथा का यह खंड भी केवल व्यक्ति तुलसी राम की कहानी होने की बनिस्बत बनारस के आस-पास जवान होते दलित समुदाय की उस पीढ़ी की कहानी है।

इसके लिए मैं सिर्फ एक प्रसंग का उदाहरण दूंगा क्योंकि अन्य लोगों के लिए उस कथा का उत्तरार्ध अनजाना है। आत्मकथा में आजमगढ़ के ही फूल चंद राम आए हैं जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में कम्युनिस्ट विरोधी दलित राजनीति में मोहरे की तरह इस्तेमाल होते हैं। बाद में यही फूल चंद राम एफ.सी.आई. के बड़े पदाधिकारी हुए और असम में एक अत्यंत दुखद घटना में पुलिस की गोली से मारे गए। उनका अपहरण उल्फा ने किया था। बड़े अधिकारी होने के नाते उन्हें छिपाना उल्फा के लिए संभव नहीं रहा तो उन्हें पुलिस को सौंपने के लिए आंतकवादी ला रहे थे। ये लोग जिस जगह छिपे थे वहां पुलिस ने छापा मारा और दोनों ओर से गोलीबारी होने लगी। फूल चंद राम को लगा कि चूंकि पुलिस उन्हीं के लिए गोली चला रही है इसलिए अगर वे बाहर आ जाते हैं तो गोलीबारी बंद हो जाएगी। ऐसा सोचकर वे दोनों हाथ ऊपर उठाए हुए अपना नाम जोर से बोलते हुए बाहर निकले। बहुत से लोगों का कहना है कि इन दिनों समर्पण संबंधी बातचीत में फूल चंद जी ने पुलिस प्रशासन के ढेर सारे रहस्य जान लिए थे इसलिए उन्हें जिंदा छोड़ देना खतरनाक था। संभव है तरक्की के लिए एनकाउंटर करने की जरूरत के चलते ऐसा हुआ हो। कारण जो भी हो पुलिस की गोली से वे मारे गए। इस तरह के तमाम पात्र और घटनाएं जो बाद के दिनों में महत्त्वपूर्ण साबित हुई उनकी सजीव उपस्थिति ने इस खंड को लगभग ऐतिहासिक दस्तावेज बना दिया है।

इसी तरह का दस्तावेजी प्रसंग गोरख पांडे का है। हिन्दी साहित्य में उनकी उपस्थिति को मिटाने और उनके योगदान को नकारने का व्यवस्थित प्रयास किया

गया है। ऐसे में लगभग पूरी आत्मकथा में उनकी अविस्मरणीय मौजूदगी उनके व्यक्तित्व के कुछ अनजाने पहलुओं को देखने का मौका देती है। शुरू में जातिगत भेदभाव के विरुद्ध जान की परवाह किए बिना तनकर खड़े होने वाले गोरख पुलिस थाने में गिरफ्तारी और पिटाई के बाद गंभीर मार्क्सवादी अध्येता की तरह उभरकर आते हैं। आगे चलकर संकल्पित नक्सल कार्यकर्ता बनने की उनकी जद्दोजहद अपने साथियों के साथ आलोचनात्मक संघर्ष में बदल जाती है। उनके प्रसिद्ध गीत 'जनता की आवे पलटनियां, हिलेले झकझोर दुनिया' की धुन की पहचान भोजपुरी इलाके के लोकगीत 'रामजी को आवे बरियितिया, परेले झीर झीर बुनिया' के बतौर की गई है। इससे गोरख पांडे की काव्य प्रतिभा का सबूत मिलता है। कौन कल्पना कर सकता है कि ऐसे लोकगीत में ऐसा प्रयाण गीत लिखा जा सकता है। इस आत्मकथा में गोरख पांडे जिस तरह उभरते हैं उदय प्रकाश की कहानी 'रामसजीवन की प्रेमकथा' और जे एन यू में उनकी मानसिक समस्याओं के बारे में फैले किस्सों से जैसी बनती है उससे गुणात्मक तौर पर भिन्न गोरख पांडे इस आत्मकथा में प्रकट होते हैं। सबसे पहले उनका प्रवेश जातिवाद विरोधी प्रचंड योद्धा के रूप में होता है। धीरे-धीरे उनका पढ़ाकू रूप सामने आता है। अन्याय के विरुद्ध जान पर खेल जाने वाले गोरख अंत में रोमांटिक क्रांतिकारी की तरह तो दिखाई पड़ते ही हैं, लेकिन दोस्ती निभाने वाले व्यावहारिक मनुष्य भी सिद्ध होते हैं।

शेरपुर गांव में दलितों की बस्ती को जलाने की घटना का उल्लेख भी बेहद साहसिक बात है। जिस तरह 'हंग्री टाइड' में मरिचझांपी के उल्लेख को भारत के पारंपरिक वाम बौद्धिक पचा नहीं पाते और उसी अपराध के चलते इस या उस बहाने में अमिताभ घोष को महत्त्वपूर्ण भारतीय उपन्यासकारों में शरीक करने में आनाकानी करते हैं उसी

शेरपुर गांव में दलितों की बस्ती को जलाने की घटना का उल्लेख भी बेहद साहसिक बात है। जिस तरह 'हंग्री टाइड' में मरिचझांपी के उल्लेख को भारत के पारंपरिक वाम बौद्धिक पचा नहीं पाते और उसी अपराध के चलते इस या उस बहाने में अमिताभ घोष को महत्वपूर्ण भारतीय उपन्यासकारों में शरीक करने में आनाकानी करते हैं उसी तरह शेरपुर की घटना का उल्लेख हिन्दी के अनेक साहित्यकारों के उस क्षेत्र से होने के बावजूद पहली बार एक दलित लेखक के हाथों होना हिन्दी के स्थापित साहित्यकारों के अनुभव संसार के बारे में केवल टिप्पणी नहीं है। उस घटना को लेकर सामाजिक विज्ञानों के भीतर भी शोध न होना भारत के शोध कार्य के एजेंडे के बारे में बहुत कुछ कहता है।

तरह शेरपुर की घटना का उल्लेख हिन्दी के अनेक साहित्यकारों के उस क्षेत्र से होने के बावजूद पहली बार एक दलित लेखक के हाथों होना हिन्दी के स्थापित साहित्यकारों के अनुभव संसार के बारे में केवल टिप्पणी नहीं है। उस घटना को लेकर सामाजिक विज्ञानों के भीतर भी शोध न होना भारत के शोध कार्य के एजेंडे के बारे में बहुत कुछ कहता है। इसी क्रम में हम अरुंधती राय के 'गॉड आफ स्माल थिंग्स' में व्यक्त वामपंथ के भीतर समाए जातिवाद को भी याद कर सकते हैं। शेरपुर वाली पूरी घटना का जिक्र संयोग से 'वैचारिक अंतर्द्वन्द्व' शीर्षक अध्याय में नहीं हुआ है। यह घटना उस द्वंद्व के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। उस क्षेत्र में यह द्वंद्व का गवाह रहा है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ही वह इलाका भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जमींदारी विरोधी गोलबंदी का केन्द्र बन चुका था। गाजीपुर जिले में सरयू पांडे और आजमगढ़ में झारखंडे राय इस गोलबंदी के नेता बनकर उभरे थे लेकिन दोनों ही जिलों में आरंभिक चुनावी सफलता ने कम्युनिस्ट नेताओं में उसे टिकाऊ रखने के लिए दलित जातियों की जगह थोड़ी दबंग जातियों के साथ मेलजोल बढ़ाने की प्रेरणा दी। नतीजा यह निकला कि नक्सल आंदोलन के प्रति इन जातियों में आकर्षण पैदा हुआ। डॉ. तुलसी राम भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ थे लेकिन दलित भी थे। सो इसी अंतर्द्वन्द्व के क्रम में शेरपुर की दलित बस्ती को सवर्णों द्वारा जलाने की घटना का आना अत्यंत स्वाभाविक है।

इस अंतर्द्वंद्व के अंग के बतौर लेखक नक्सल कार्यकर्ताओं को खोजने के लिए बंगाल की दोबारा यात्रा करता है। इस बार वह कलकत्ता हमारी आंखों के सामने आता है जिसकी हवा में सनसनी थी। शायद ही किसी अन्य हिन्दी लेखक की रचना में वह कलकत्ता

आया होगा जहां मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं में नक्सलवादियों के प्रति सहानुभूति दिखाई पड़ी हो। आज तो शायद लोग भूल भी गए होंगे कि नक्सल नेता चारू मजूमदार मूल रूप से मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के दार्जिलिंग जिले के नेता थे। यह खदबदाता हुआ कलकत्ता भी ऐतिहासिक शोध की समृद्ध सामग्री है। खुद नक्सलबाड़ी का ब्यौरा भी बहुत हद तक तथ्यात्मक है। नक्सलबाड़ी के बारे में तमाम लेखन वैचारिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होता है लेकिन असहमति के बावजूद यह चित्रण उसी साक्षी भाव के चलते विश्वसनीय बन पड़ा है जिसकी चर्चा हमने पहले की है। फिर भी यह उल्लेख करना जरूरी है कि यह साक्षी भाव निरपेक्ष नहीं है बल्कि एक तरह की निस्संगता के कारण और भी प्रभावी हो उठा है।

इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि डॉ. तुलसी राम ने विभिन्न स्थानों और व्यक्तियों को जिस कालखंड में दर्ज किया है वे उस समय की जीवंत झांकी प्रस्तुत करते हैं। ऐसा नहीं कि वे चित्र स्थिर हों बल्कि उनमें पर्याप्त गतिमयता है लेकिन किसी कुशल चित्रकार की कूंची से दर्ज गतिमयता। इसका सबसे बड़ा प्रमाण कलकत्ते का बयान है। लेखक अनेक यात्राओं में 'बिदेसिया' के इस शहर के अनेक रूप प्रस्तुत करता है। बनारस में पढ़ाई के लिए पैसे की जरूरत थी, इस विडंबना को सबसे अधिक बैचेनी के साथ रवींद्रनाथ टैगोर ने दर्ज किया कि शिक्षा के लिए धन की वसूली अंग्रेजी राज में शुरू हुई। बहरहाल पैसे के लिए कलकत्ते की यात्रा दिल दहलाने वाली स्थितियों में हुई। रेल के डिब्बे के बाहर लोहे के डंडे से लटककर रात भर की यात्रा इतनी भयानक थी कि उसके शब्दों में उतारना लेखक के लिए लगभग असंभव रहा होगा। जीवन की कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जिन्हें याद करने में भी तकलीफ होती है। इस आत्मकथा में ऐसे बीसियों प्रसंग हैं। शायद इसी कारण लेखक ने बिना कोई अतिरिक्त भावुकता जोड़े केवल परिस्थिति का साक्षी भाव से बयान कर दिया है। इसी साक्षी भाव के चलते कलकत्ते के जीवन के वे यथार्थ सामने आए हैं जो उत्तर प्रदेश और बिहार के प्रवासी मजदूरों के जीवन में रोजमर्रे की बात थीं। मसलन मजदूरों के मुहल्ले में हल्ला गाड़ी का बाना। हल्ला गाड़ी का वर्णन यह साबित करता है कि वर्गीय भेदभाव एक स्तर पर नस्ली भी हो जाता है। मजदूरों के जीवन के उस समय के इस प्रामाणिक बयान से ट्रेड यूनियन आंदोलन की अनेक गुत्थियां भी उभरकर प्रकट होती हैं। रेल के मुख्यालय बदलने की आशंका के मद्देनजर बंगाली कर्मचारियों का 'छात् लंका खाबो ना' का नारा इस जटिलता को समझने की अंतदृष्टि देता है। इसी तरह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जहां से लेखक को उच्च शिक्षा हासिल होती है में प्रवेश हेतु भरे जाने वाले आवेदन पर भेदभाव बढ़ाने वाली जानकारी मांगी जाती थी। उच्च शिक्षा के केन्द्र बनारस में किराए पर कमरा लेकर सम्मान के साथ जीवन बिताना किसी दलित विद्यार्थी के लिए असंभव सा काम नजर आता है। यह तथ्य भारत के शहरों के सामाजिक मनोविज्ञान पर भी बड़ी टिप्पणी है। इन विशेषताओं के चलते यह पूरी आत्मकथा भारत में और खासकर हिन्दी में सामाजिक विज्ञानों के विकास को प्रेरित करेगी। अगर हम पहले और वर्तमान खंड के पात्रों को गिनती करें तो सचमुच इस आत्मकथा के महाकाव्यात्मक विचार की थाह ले सकेंगे। शुरुआत से ही पाठकों का सामना लोकतंत्र की सम्मानित संस्थाओं के ढकोसले से होता है।

जातिगत भेदभाव के प्रति गुस्सा पूरी आत्मकथा से अंतर्धारा की तरह बहता रहता है। परिवर्तनकामी राजनीति करने वालों के लिए अनिवार्य सवाल के रूप में लेखक इस समस्या को उठा देता है। तुलसी राम ने दिखा दिया है कि कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर भी कितने सूक्ष्म रूप में यह मौजूद रहता है। भारत में संघर्षरत कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए अब इस सवाल को टालने का कोई अवसर नहीं बचा है। परिवर्तन की व्याख्या केवल राजनीतिक रहेगी तो ऐसे विचलनों की संभावना बनी रहेगी। बदलाव को अंततः सामाजिक होना होगा जिसका प्रतिफलन राजनीतिक सत्ता के बदलाव में होगा। इसी अर्थ में यह आत्मकथा समग्र संघर्ष की परिकल्पना को फौरी कार्यभार बना देती है।

अंतिम बात यह कि बहुत दिनों बाद ऐसी सृजनात्मक भाषा हिन्दी के व्यापक पाठक समुदाय को पढ़ने के लिए मिली है जिसमें हिन्दी की बोलियों का सत्व है। ध्यान दें तो व्यापक रूप से ऐसी हिन्दी बहुत दिनों से लिखी जा रही है जिसमें व्यक्तितत्व नहीं होता। शायद ऐसी अखबारी भाषा के प्रभुत्व से हुआ होगा। एक बार फिर से प्रमाणित हुआ कि भाषा में चित्रात्मकता और बिंबात्मकता उसकी बोलियों से आती है। डबल, ट्रिपुल और चर्पुल सिंह हाथ में बंदूक पकड़े हुए 'गनगन गनगन' कांपते हुए बिना इस भाषा के प्रत्यक्ष नहीं हो सकते हैं।

डॉ. तुलसी राम का लेखन सचमुच राजनीतिक कर्म सा प्रतीत होता है। उनके जीवनानुभव और व्यवस्था जनित रहस्य भेद कर सच्चाई को उजागर कर देने वाली अंतदृष्टि उन्हें सारी कमियों के बावजूद बाकी लेखकों से बीसियों गज ऊंचा उठा देती है, न केवल दलित लेखकों से बल्कि हिन्दी के तमाम मूर्धन्य लेखकों से भी। ■

जनसंपर्क के क्षेत्र में असीमित संभावनाएं

■ प्रा. सौ. विजया जगन्नाथ पिंजारी - शिंदे

भारत में अब हिन्दी बोलने-समझने वालों की संख्या 75 से 80 करोड़ के करीब है। जिस भाषा को इतनी बड़ी तादाद में किसी देश की जनता जानती, मानती और समझती हो उस देश में वह भाषा रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों से निष्कासित हो यह बात गले नहीं उतरती। भारत के संदर्भ में हिन्दी को लेकर रोजगार-अर्जन की संभावनाएं अनंत करनी होंगी। प्रयोजनमूलक हिन्दी का एक लक्ष्य रोजगारोन्मुख हिन्दी का विकास इसी अनुपात का विषय मानना पड़ेगा। मैंने यहां इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जनसंपर्क अधिकारी के रूप में हिन्दी का अध्ययन करने वालों को रोजगार के अच्छे अवसर उपलब्ध हैं।

जनसंपर्क समाज में नए परिवेश से परिचित होने की निराली कला है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं। जनसंपर्क जनसंचार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी है। किसी संस्थान, सरकार अथवा दो पक्षों के मध्य बेहतर समझ विकसित करने के लिए जनसंपर्क बेहद आवश्यक तत्व है। सेटेलाईट चैनल की संस्कृति तथा इंटरनेट की सभ्यता वाले आधुनिक दौर में सफलता के लिए गुणवत्ता से अधिक छवि मायने रखती है। जनसंपर्क का उद्देश्य व्यक्तियों व संगठनों के बीच अच्छी छवि निर्मित करना है। यह बात सर्वविदित है कि अच्छी छवि वाला संगठन सहजता व स्थिरता के साथ सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ता चला जाता है। आज अनेक शिक्षित युवक-युवतियां इस क्षेत्र में अपने स्वर्णिम कल को निहार रहे हैं।

जनसंपर्क की आवश्यकता

आज के भौतिकवादी समाज में एक-दूसरे से संपर्क स्थापित करने के लिए लोग जनसंचार के माध्यमों, जैसे-टेलीफोन, रेडियो, टी.वी. आदि पर निर्भर रहते हैं और यदि ऐसे समय में उपभोक्तावादी संस्कृति से समाज ग्रसित हो तो उत्पादक और उपभोक्ता के बीच एक संवादकर्ता या माध्यम की आवश्यकता होती है। उपभोक्ता और उत्पादक के बीच की महत्वपूर्ण बातों को महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए जनसंपर्क अधिकारी की आवश्यकता महसूस होने लगी है।

जनसंपर्क एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है जिसका उद्देश्य किसी संगठन और उसके उपभोक्ताओं के बीच सीधा रिश्ता कायम करने तथा उस कंपनी की छवि को उन्नत बनाने में एक सेतु की तरह कार्य करता है। जनसंपर्क अधिकारी के रूप में पब्लिक रिलेशन ऑफिसर को मान्यता तो लगभग बीस वर्षों से ही मिली है। आज स्थिति यह है कि चाहे बैंक हो या सरकारी कार्यालय, कंपनी हो या फैक्टरी, कॉलेज हो या किसी अखबार का दफ्तर, शॉपिंग पॉईंट हो या मीडिया का क्षेत्र, हर जगह जनसंपर्क अधिकारी की जरूरत रहती है। आजकल तो बहुत सी कंपनियों में जनसंपर्क विभाग स्थापित हुआ है।

जनसंपर्क को जनसंचार की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी माना जाता है। किसी भी संस्थान, सरकार अथवा दो पक्षों के मध्य अच्छे संबंध विकसित करने के लिए जनसंपर्क अत्यंत आवश्यक है।

जनसंपर्क का उद्देश्य

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में कामयाबी, लोकप्रियता विश्वास बहुत महत्वपूर्ण गुण बन गये है। पी.आर. शिप का महत्व और भी बढ़ गया है। कॉरपोरेट जगत हो या फिर सरकारी महकमा, अस्पताल हो अथवा कोई स्वयंसेवी संगठन, टूरिस्ट और ट्रेवल एजेंसी हो अथवा प्रोडेक्ट एजेंसी। इतना ही नहीं, स्कूल-कॉलेजों, सांस्कृतिक संगठनों किसी निश्चित तिथि पर आयोजित होने वाले कार्यक्रमों के लिए भी अलग से जनसंपर्क व्यवस्था का दायित्व अच्छा होने के उद्देश्य से किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति पर सौपा जाने लगा है।

सफल संगठन का उद्देश्य सफल जनसंपर्क का उद्देश्य केवल अपनी बात का प्रसार और प्रचार करना नहीं अपितु जनसंपर्क अधिकारी को यह सोचना पड़ता है। वह जिस संस्था में काम करता है। उस संस्था के बारे में लोग क्या सोचते है? इतना ही नहीं जनसाधारण की अपेक्षा और उम्मीदों के बारे में भी उसे सतर्क रहना पड़ता है। जिन उद्देश्यों एवं आदर्श की प्राप्ति के लिए कोई कंपनी बनाई जाती है तो जनसंपर्क अधिकारी को इन उम्मीदों को पूरा करना पड़ता है।

मौजूदा परिवेश में जनसंपर्क एक बेहद संभावना वाला कैरियर बनकर उभरा है। सरकारी कार्यों की उपलब्धियां, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, मंत्री तथा विभिन्न विभागों की उल्लेखनीय उपलब्धियों को प्रचारित प्रसारित करने के लिए सरकार द्वारा राज्य एवं केन्द्र स्तर पर बाकायदा सूचना व जनसंपर्क विभाग स्थापित किया जाता है। यह विभाग समय-समय पर वांछित सूचनाएं जनसाधारण तक पहुंचाने में अहम भूमिका निभाते हैं। जनसंपर्क विभाग द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों, समारोहों, सेमिनारों आदि का आयोजन भी करना पड़ता है। कंपनी की सहयोगी पार्टियों के साथ तारतम्य बैठाने का कार्य भी करते हैं। निर्धारित समय में निम्न काम करना उसका उद्देश्य होता है। प्रेस विज्ञप्तियां

तैयार कराना, रिपोर्ट बनाना, फिल्म अथवा वीडियो, सी.डी. तैयार करवाना, कंपनी की उपलब्धियों का लेखा-जोखा तैयार करना आदि।

देश-विदेश से जुड़े अनेक मसलों को सही दिशा दिखाने का कार्य भी जनसंपर्क के द्वारा आसानी से किया जा सकता है। यदि भारत-पाक विभाजन के समय, अनेक युद्धों के दौरान सही रूप से जनसंपर्क किया जाता तो न तो विभाजन होने की कोई गुंजाइश रहती और न ही बड़े-बड़े युद्धों की विभीषिका के दौर से गुजरकर जनता आहत होती।

जनसंपर्क अधिकारी के कार्य

- मुख्य कार्य सहयोगी पार्टियों के बीच तालमेल बिठाना।
- विभिन्न योजनाओं को निश्चित समय पर तय करना एवं बजट में उसे पूरा करना।
- कंपनी की उपलब्धियों का लेखा-जोखा तैयार करना।
- कार्य करते समय आने वाली परेशानियों को दूर करने के रास्ते ढूंढना।
- विज्ञापनों को समयानुसार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं टी.वी. चैनलों पर देना।
- अन्य लोगों पर कंपनी की छवि अच्छी उतरे इसके लिए प्रयास करना।
- प्रेस कॉन्फ्रेंस से लेकर प्रदर्शनी और ट्रेड फेयर का काम भी उसे खुद करना/देखना पड़ता है।

इसी कारण जनसंपर्क अधिकारी के प्रेस के कर्मचारियों को प्रेस अधिकारी, प्रचार अधिकारी, सूचना अधिकारी, प्रशासन् अधिकारी भी कहा जाता है।

जनसंपर्क अधिकारी के गुण

- पत्रकारों, मैनेजरों और कंपनी के दूसरे कर्मचारियों से समान रूप से वास्ता रखना। सबके साथ संतुलित व्यवहार करे।
- उसका कूटनीति में माहिर होना। दूसरों की बातों में मशगूल होना। धुल-मिल जाना। व्यवहार कुशल होना बहुत जरूरी होता है।
- बातचीत से निपुण तो होना ही चाहिए साथ-ही-साथ अधिक-से-अधिक भाषाओं की जानकारी भी होनी चाहिए।
- आकर्षक व्यक्तित्व होना चाहिए।
- सामने वाले की मन:-स्थिति को जानने की क्षमता होनी चाहिए।
- अपने क्षेत्र से संबंधित विषय की पूरी जानकारी या पुरानी सूचनाओं की जानकारी भी होनी चाहिए।
- स्पष्ट बात कहने और लिखने की उसमें योग्यता होनी चाहिए।
- अत्यधिक दबाव के तहत भी उससे अधिक-से-अधिक काम की उम्मीद की जाती है।
- अपनी बात से दूसरों को सहमत करने की कला उसमें होनी चाहिए।
- अपनी कंपनियों या प्रतिष्ठान की खूबियों की जानकारी दूसरों के बीच पेश करने वाला धैर्यवान प्रवृत्ति का स्वामी उसे होना चाहिए।

उपर्युक्त गुणों के होते हुए एक व्यक्ति सफल जनसंपर्क अधिकारी बन सकता है।

जनसंपर्क अधिकारी बनने के लिए योग्यता

जनसंपर्क विषय में पाठ्यक्रम स्वतंत्र रूप से डिप्लोमा इन पब्लिक रिलेशंस या एकाध विषय और जोड़कर जैसे डिप्लोमा इन एडवरटाइजिंग एंड पब्लिक रिलेशंस, डिप्लोमा इन जर्नलिज्म एंड पब्लिक रिलेशंस भी कराए जा रहे हैं। अनेक संगठन केवल पत्रकारिता के क्षेत्र में डिप्लोमा प्राप्त लोगों को भी जनसंपर्क के लिए भी चयनित कर लेते हैं। आमतौर पर यह डिप्लोमा प्राप्त लोगों को भी जनसंपर्क के लिए भी चयनित कर लेते हैं। आमतौर पर यह डिप्लोमा एक साल का होता है। फोर्स की फीज और अन्य खर्च संस्थान पर निर्भर करते है। पाठ्यक्रम में बोलचाल के तरीके, मार्केटिंग, एडवरटायजिंग, जनसंपर्क और मास मीडिया की बारिकियां शामिल होती है। लेखन, संपादन, मीडिया प्लानिंग, ग्राफिक्स और प्रोडक्शन के बारे में भी छात्रों को अवगत कराया जाता है। आमतौर पर जनसंपर्क के कोर्स स्नातकोत्तर के लिए होते हैं। पाठ्यक्रम में व्यावहारिक प्रशिक्षण को भी शामिल किया जाता है। एडवरटायजिंग एजेंसी अथवा किसी स्वतंत्र कंपनी के साथ एक माह की इंटर्नशिप के जरिए प्रैक्टिकल ज्ञान अवगत कराया जाता है। अनेक संस्था अल्पकालीन कोर्स भी अवगत करा रहे है।

जनसंपर्क पोस्ट ग्रेजुएट प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान

- ग्रेजुएट डिप्लोमा इन एडवरटाइजिंग एंड पब्लिक रिलेशन, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मास कम्युनिकेशन, जे.एन.यू. न्यू कैंपस, नई दिल्ली-110067
- डिप्लोमा इन पब्लिक रिलेशंस, भारतीय विद्या भवन, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली, शाखाएं-मुंबई, कलकत्ता, चेन्नई, हैदराबाद, बंगलौर।
- डिप्लोमा इन पब्लिक रिलेशंस, सेंट जेवियर्स कॉलेज ऑफ कम्युनिकेशंस, मुंबई
- गुजरात विश्वविद्यालय, नवरंगपुरा, अहमदाबाद-300009
- माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, ई-8/176, एरिया कॉलोनी, पी.ओ.डी., आर.एस.एन/60 भोपाल-460216 (मध्य प्रदेश)
- अलीगढ़, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)
- अन्नामलाई विश्वविद्यालय, पत्राचार विभाग, अन्नामलाई नगर-608002 (तमिलनाडु)

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- जनसंचार कल, आज और कल-चंद्रकांत सरदाना, कृ.शि. मेहता
- मीडिया कालीन हिन्दी स्वरूप एवं संभावनाएं - डॉ. अर्जुन चव्हाण
- जनमाध्यम : संप्रेषण और विकास-देवेंद्र इस्सर
- जनमाध्यम और पत्रकारिता - प्रवीण दीक्षित
- जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता-डॉ. अर्जुन तिवारी
- मीडिया के पचास वर्ष-प्रेमचंद पातंजलि
- जनसंचार और विकास-अंजन कुमार बनर्जी

परिवर्तन

■ बद्री प्रसाद वर्मा अनजान

दीपावली की रात थी। चारों तरफ दीपकों की लम्बी-लम्बी कतारें नजर आ रही थी। मानों आज हर तरफ उजाले की बरसात हो रही थी।

आज चारों तरफ चहल-पहल मची हुई थी। बच्चे, बड़े-बूढ़े सभी नये-नये कपड़े पहने दिखाई दे रहे थे। चारों तरफ से रह-रह कर पटाखों की आवाजें सुनाई दे रही थी। आसमान में भी रॉकेट अपना उजाला फैला रहे थे।

इतने में रवि अपने मित्र गोपाल से बोल पड़ा, तुम यह फुलझड़ियां, अनार, चर्खी छोड़ कर बेकार की दीवाली मना रहे हो। अगर तुम्हें हमारे पटाखों से मुकाबला करना है तो हमारी तरह यह एटमबम, रॉकेट छोड़कर दिखाओ तो जानूं।

तभी वहां मोनू, बिट्टू, विकी, सत्यम, यीशु भी आ गए और रवि को अपने हाथ में ढेर सारे एटमबम और रॉकेट के भरे हुए डिब्बे लिए देख कर बोल पड़े, रवि तुम बेकार में गोपाल पर अपना रौब झार रहे हो। गोपाल एक गरीब मां-बाप का बेटा है और तुम एक अमीर बाप के बेटे हो। तुम्हारे और गोपाल में जमीन आसमान का फर्क है।

गोपाल गरीब है तो हमें क्या? अगर तुम सब में से किसी में हमसे मुकाबला करने की हिम्मत है तो हमारे सामने हमारे जितना एटमबम और रॉकेट जलाकर दिखाए।

रवि की इतनी बात सुनकर मोनू, बिट्टू, विकी, सत्यम और यीशु एक साथ बोल पड़े, हम सब तुमसे मुकाबला करने नहीं आए हैं। हम तो मिल-जुलकर दीपावली मनाने आए हैं।

जानते हो ज्यादा पटाखा, एटमबम, रॉकेट, चर्खी, फुलझड़ी जलाने से हमारा पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है। मैं तो सबसे यही कहूंगा कि महंगे पटाखे छोड़ने से एक तरफ पैसे की हानि होती है तो दूसरी तरफ हमारे पर्यावरण की हानि होती है।

इतना ही नहीं एटमबम से जलने और घायल होने का डर भी बना रहता है। तुम्हें याद होगा पिछले साल पंकज एटमबम के धमाके से घायल हो गया। और उसके दोनों आंखों की रोशनी हमेशा-हमेशा के लिए चली गई।

इतना सुनते ही रवि के हाथ पांव कांप उठे। वह सोचने पर मजबूर हो गया कि मोनू, बिट्टू, विकी, सत्यम और यीशु ठीक कह रहे हैं। हमें पर्यावरण की रक्षा करनी चाहिए। ताकि स्वास्थ्य पर बुरा असर न पड़े।

इतना सोच कर रवि अपना सारा पटाखा, एटमबम, रॉकेट पास के एक नाले में फेंक कर बोला, अब मैं पटाखे, एटमबम, रॉकेट नहीं छोड़ूंगा। मैं दीपों को जलाकर दीपावली मनाऊंगा।

रवि में अचानक आए इस परिवर्तन को देख कर गोयल बोल पड़ा क्या हमसे पटाखों का मुकाबला नहीं करोगे?

गोपाल तुम मुझे शर्मिन्दा मत करो, मैं तुमसे घमंड में आकर ऐसा कह बैठा था। अब तो मैंने निश्चय कर लिया है दीपावली पर कभी पटाखें नहीं छोड़ूंगा और दूसरों को भी पटाखा छोड़ने से मना करूंगा। ताकि पर्यावरण की रक्षा हो सके।

रवि की इतनी बात सुनकर मोनू, बिट्टू, विकी, सत्यम, यीशु और गोपाल बोल पड़े। रवि हम तुम्हारी हर बात का सम्मान और समर्थन करते हैं। आज से हम सब मिलकर पर्यावरण की रक्षा में जुट जाएंगे। ताकि हम आने वाले समय में पर्यावरण प्रदूषण से पूरी तरह छुटकारा पा सके।

बात समाप्त होते ही सभी दोस्त एक दूसरे को दीपावली पर हार्दिक शुभकामनाएं देकर अपने-अपने घर की ओर चल दिए। ■

(लेखक जाने माने लघु कथाकार व टिप्पणीकार हैं।)

अपने लेख ई-मेल करें

सामाजिक न्याय संदेश में

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर पर शोधपरक गंभीर व विश्लेषणात्मक लेख, कविताएं, कहानियां, आदि रचनाएं और दलित-स्त्री-आदिवासी साहित्य व विमर्श पर सामग्री भेजें। अपने लेख, डाक द्वारा भेजें या ई-मेल करें। ई-मेल करने के लिए, वॉकमैन चाणक्य (Walkman-chankya-905) फोंट का इस्तेमाल करते हुए अपने वर्ड ओपन फाईल को hilsayans@gmail.com अथवा editorsnsp@gmail.com पर भेजें। रचनाओं के मौलिक, अप्रसारित व अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र भी संलगन करें।

-सम्पादक

सामाजिक न्याय संदेश

15 जनपथ, नई दिल्ली-110001,

टेलीफोन : 011-23320588,

बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' की कविताएं

सूरज भैया

आग जला कर सबको,
तपा रहे हैं सूरज भैया।
धूप गरम गरम रोज,
बरसा रहे हैं सूरज भैया।

तापमान 45 डिग्री फारेनहाइट पर,
पहुंचा रहे हैं सूरज भैया।
आग की भट्ठी में सबको,
जला रहे हैं सूरज भैया।

धरती को जला कर,
लावा बना रहे हैं सूरज भैया।
सारे तालों नदियों को,
सूखा रहे हैं सूरज भैया।

मुंह से आग खूब,
बरसा रहे हैं सूरज भैया।
पेड़ों और पत्तों को,
झुलसा रहे हैं सूरज भैया।

आ जाते सूरज भैया

रोज सुबह दुल्हा बन कर,
आ जाते सूरज भैया।
बैठ उजाले के रथ पर,
मुस्काते सूरज भैया।

धूप की आतिशबाजी,
दिखलाते सूरज भैया।
कभी गरम कभी नरम,
बन जाते सूरज भैया।

धरती और अम्बर में,
धूम मचाते सूरज भैया।
दुल्हा बन कर सब पर,
रौब जमाते सूरज भैया।

उजाले के रथ को लेकर ,
घर जाते सूरज भैया।
रोज नया दुल्हा बनकर,
पूरब दिशा से आते सूरज भैया।

मेरे सूरज दादा

गुस्से में नजर आ रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।
दादा गिरी दिखा रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।

आग के गोले बरसा रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।
सबके बदन झुलसा रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।

गर्मी का पारा चढ़ा रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।
पानी को सोख जा रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।

लाल-लाल आंखे दिखा रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।
धरती को जला रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।

तरस नहीं कुछ खा रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।
अकड़ खूब दिखला रहे हैं,
मेरे सूरज दादा।

स्वच्छता अभियान

साफ सफाई पर लोगों,
रखो हर दिन ध्यान।
सफल बनाओ मिलकर,
देश का स्वच्छता अभियान।

जगह-जगह कूड़ा कचरा,
देखो मत फैलाओ।
कूड़े दान में घर का कचरा,
डाल कर रोज आओ।

गांव-गांव और शहर-शहर,
स्वच्छता का अभियान चलाओ।
सड़कों की साफ-सफाई में,
सब लोगों शामिल हो जाओ।

नाली और नाले की,
रोज करो सफाई।
मच्छरों को कहीं भी,
पनपने मत दो भाई।

पॉलिथिन का लोगों,
मिल कर बहिष्कार करो।
इसका प्रयोग करना,
एकदम बन्द करो।

मिलकर सभी लगाओ,
स्वच्छता का खूब नारा।
सुन्दर साफ दिखे,
गांव शहर हमारा।

मलेरिया, डेंगू, इंसेफलाइसिट,
बीमारी फैलने ना पाएगी।
रोगियों से अस्पताल,
खाली नजर आए।

साफ-सफाई पर सबको,
देना होगा ध्यान।
तभी सफल हो पाएगा,
मेरा स्वच्छता अभियान। ■

सम्पादक के नाम पत्र

संविधान के रचयिता डॉ. अम्बेडकर

सम्पादक महोदय,

आपके द्वारा संपादित 'सामाजिक न्याय संदेश' के द्वारा हमें ज्ञात हुआ कि बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने अपनी स्वास्थ्य दांव पर लगाकर देश का संविधान लिखा है, सही मायने में डॉ. अम्बेडकर राष्ट्र निर्माता है और उनके द्वारा प्रदत्त संविधान हर किसी को एक समान समझने का संदेश देता है।

दरअसल यथास्थितिवादी समाज में परिवर्तन का पैगाम देता हमारा संविधान समाज के आखिरी व्यक्ति को अगली पंक्ति में लाने का मार्ग प्रशस्त करता है। संविधान में किए गए प्रावधानों से हमारा देश-विधायिका कार्यपालिका आदि चलता है।

आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास भी हैं कि बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के सपनों का भारत अर्थात् 'समतावादी समाज' का निर्माण आने वाले दिनों में और भी प्रबल होगी।

देश-समाज प्रतिष्ठान की मासिक पत्रिका सामाजिक न्याय संदेश की भी उसमें अहम् भूमिका की अपेक्षा करता है आशा है आप हमें निराश नहीं करेंगे।

रवि कुमार
तिलक नगर, नई दिल्ली

ऑनलाईन पत्रिका पढ़ने का अवसर मिला

सम्पादक महोदय,

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार के स्वायत्तशासी संगठन डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के द्वारा पिछले लंबे समय से प्रकाशित 'सामाजिक न्याय संदेश' मासिक पत्रिका के पिछले कई अंक ऑनलाईन पढ़ने का अवसर मिला, पत्रिका में बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन से जुड़े कई छोटे-बड़े पहलुओं के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी हासिल हुई, इसके साथ ही आपका संपादकीय, पत्रिका की गंभीरता व उत्कृष्टता को दर्शाता है।

पत्रिका के हाल के अंकों में कुछ आवश्यक सामाजिक जागृति एवं समरसता का संदेश प्रकाशित करना सराहनीय कदम है। पत्रिका के प्रचार-प्रसार में सुधी पाठकों का सहयोग आवश्यक है।

सूरजभान कटारिया
विकासपुरी, नई दिल्ली-18

सम्पादकीय उत्कृष्ट

सम्पादक महोदय,

'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका का सितम्बर का अंक देखा। इस बार के अंक में हिन्दी दिवस पर संपादकीय, आदि लेख बहुत पसंद आया। यदि यह कहा जाए कि पत्रिका की सम्पादकीय उच्च कोटि की है तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, हिन्दी दिवस पर हिन्दी के प्रति हमारी चेतना तथा भारतीय संविधान में राजभाषा हिन्दी पर दोनों लेख काफी पसंद आए थे। डॉ. अम्बेडकर जीवन चरित स्तंभ भी बहुत पसंद आ रही हैं।

पत्रिका में कहानी और बच्चों की रचनाएं नियमित दी जाएं। सामाजिक न्याय संदेश पत्रिका देश में अधिक से अधिक पढ़ी जाए तथा इसका हर पाठक ग्राहक-सदस्य बनकर इसकी पाठक सदस्यता बढ़ाएं। पत्रिका नियमित समय पर प्रकाशित हो। पत्रिका में लेखकों का पूरा पता और मोबाइल नम्बर भी प्रकाशित की जाए।

बद्री प्रसाद वर्मा अनजान
गोरखपुर, उ.प्र.

'नई क्रांति पैदा कर रही है'

सम्पादक महोदय,

आप द्वारा संपादित 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका काफी समय से पढ़ रहा हूं। यह पत्रिका डॉ. अम्बेडकर साहब के विचारों एवं संदेशों के प्रचार के साथ ही समाज में नई क्रांति पैदा कर रही है जिसके माध्यम से उन लोगों के उम्मीदों को पंख प्रदान कर रही है जो समाज में उपेक्षित हैं।

कृपया करके सामाजिक न्याय संदेश पत्रिका को वाराणसी (उ.प्र.) में उपलब्ध कराने की कृपा करें जिससे अन्य लोग भी इसका लाभ प्राप्त कर सकें।

डॉ. गोपाल यादव
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी (उ.प्र.)

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संगठन) की मासिक पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

सम्पादक : सुधीर हिलसायन

सम्पादकीय सम्पर्क : 011-23320588/सब्सक्रिप्शन सम्पर्क : 011-23357625

मई 2015

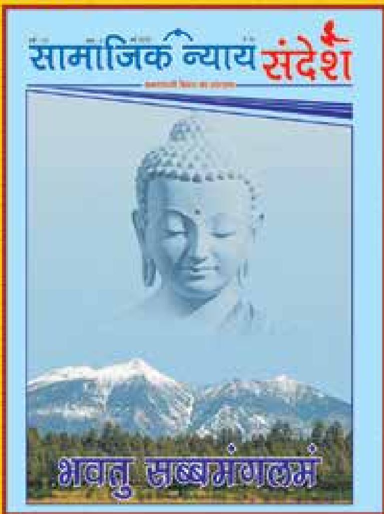

जून 2015

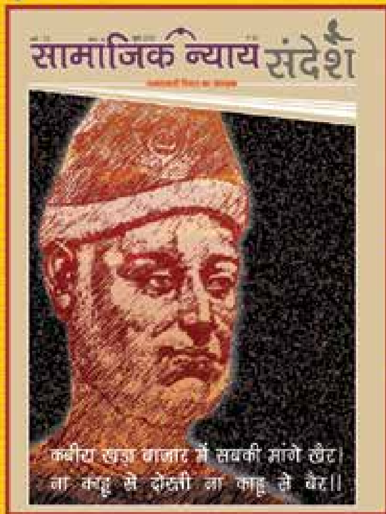

जुलाई 2015

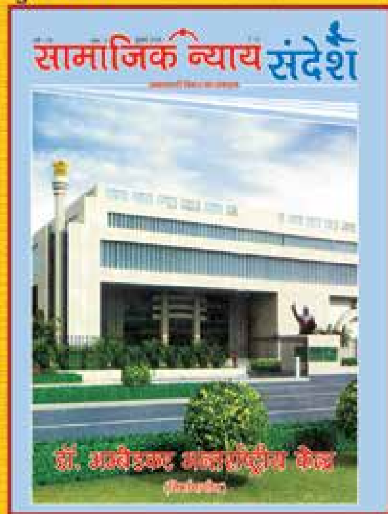

अगस्त 2015

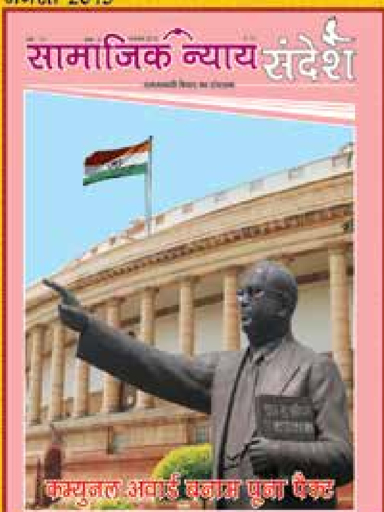

सितम्बर 2015

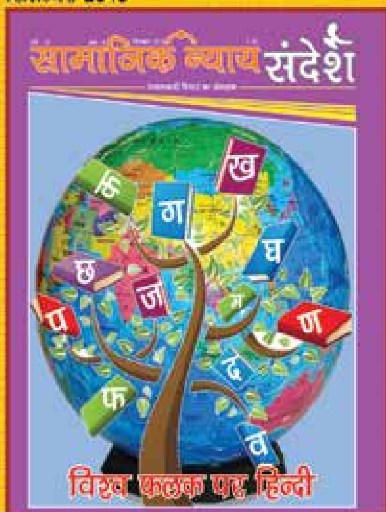

अक्टूबर 2015

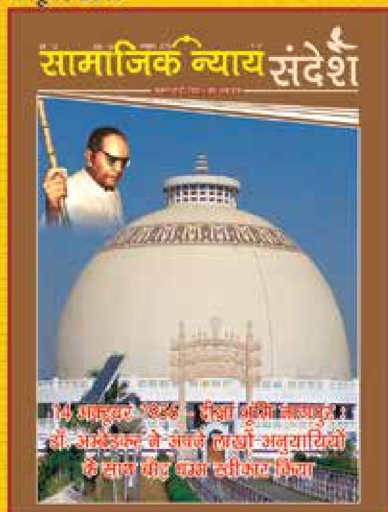

स्वयं पढ़े एवं दूसरों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

पाठक सदस्य बनें

कार्यालय : 15, जनपथ, नई दिल्ली–110001, फोन नं. 011–23320588, 23320589, 23357625 फैक्स: 23320582
E-mail: hilsayans@gmail.com / Website: www.ambedkarfoundation.nic.in

पत्रिका उपर्युक्त वेबसाइट पर पढ़ी/देखी जा सकती है।

सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका *'सामाजिक न्याय संदेश'* का प्रकाशन पुनः आरम्भ हो गया है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित, सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के संदेश को आम नागरिकों तक पहुंचाने में 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' से बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों व उनके दर्शन को जानने/समझने में मदद मिलेगी ही तथा फाउन्डेशन के कल्याणकारी कार्यक्रमों एवं योजनाओं की जानकारी भी प्राप्त होगी।

सामाजिक न्याय के कारवां को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका से जुड़कर आप अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। आज ही पाठक सदस्य बनिए, अपने मित्रों परिवार-समाज के सदस्यों को भी सदस्य बनाईए, पाठक सदस्यता ग्रहण करने के लिए एक वर्ष के लिए रू. १००/-, दो वर्ष के लिए रू. १८०/-, तीन वर्ष के लिए रू. २५०/-, का डिमांड ड्राफ्ट, अथवा मनीऑर्डर जो **'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन'** के नाम देय हो, फाउन्डेशन के पते पर भेजें या फाउन्डेशन के कार्यालय में नकद जमा करें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे। पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए आपके अमूल्य सुझाव का भी हमेशा स्वागत रहेगा। पत्रिका को फाउन्डेशन की बेबसाइट www.ambedkarfoundation.nic.in पर भी देखी/पढ़ी जा सकती है।

– सम्पादक

सामाजिक न्याय संदेश सदस्यता कूपन

मैं, डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का ग्राहक बनना चाहता /चाहती हूं/

शुल्कः वार्षिक सदस्यता शुल्क रू. 100/-, **द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 180/-, **त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 250/-। (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

मनीऑर्डर/ डिमांड ड्राफ्ट नम्बर..दिनांक........................संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर 'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन' के नाम नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

....पिन कोड ....

फोन/मोबाईल नं....................................ई.मेलः ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित निम्न पते पर भेजिए :

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन

15 जनपथ, नई दिल्ली-110 001 फोन न. 011-23320588, 23320589, 23357625

डॉ. अम्बेडकर की 125वीं जयन्ती वर्ष में स्मारक डाक टिकट

डॉ. अम्बेडकर की 125 वीं जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में 30 सितम्बर 2015 को डॉ. अम्बेडकर स्मारक डाक टिकट जारी करते हुए सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री एवं डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री थावर चन्द गेहलोत एवं संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री श्री रविशंकर प्रसाद, सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री श्री कृष्णपाल गुर्जर एवं श्री विजय सांपला।

डॉ. अम्बेडकर की 125 वीं जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में 30 सितम्बर 2015 को डॉ. अम्बेडकर स्मारक डाक टिकट जारी किए जाने के सुअवसर पर शास्त्री भवन (नई दिल्ली) स्थित पत्र सूचना कार्यालय हॉल में विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों एवं पत्रकारों को संबोधित करते हुए संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री श्री रविशंकर प्रसाद।

RNI No. DELHIN/2002/9036

प्रकाशक व मुद्रक जी.के. द्विवेदी, द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए इण्डिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली-110064 से मुद्रित तथा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15 जनपथ, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित।
सम्पादक : सुधीर हिलसायन